द्वितीय माला] ओ३म् [ट्रैक्ट संख्या १०

वेद क्या हैं ?

सम्पादक
श्री पं० गङ्गा प्रसाद उपाध्याय, एम० ए०

प्रकाशक
ट्रैक्ट विभाग, आर्य समाज चौक
इलाहाबाद—३

प्रथम बार १०००० } सम्वत् २०२१ विक्रमी
१९६४ ई०
सृष्टि-सम्वत् १,९७,२९,४९,०६५ { मूल्य ४ पैसे
३) सैकड़ा

* ओ३म् *

वेद क्या हैं ?

(लेखक—एक वेदप्रेमी)

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

वेद हमारे धर्म पुस्तक हैं, उसी प्रकार जैसे कुरान तथा बाइबल मुसलमानों व इसाइयों के। वेदों से तात्पर्य मंत्र संहिताओं से है न कि ब्राह्मण ग्रन्थों से। वेद ईश्वरोक्त हैं और ब्राह्मण ग्रन्थ महर्षियों द्वारा लिखे गये हैं। वेद आर्य जीवन का आधार हैं।

वेद ईश्वरकृत हैं

वेद किसी मनुष्य ने नहीं बनाये। परम पिता परमात्मा ने जब सृष्टि रची तो मनुष्य मात्र के हित के लिये वेद ज्ञान का चार ऋषियों के हृदयों में आत्म प्रेरणा (Conscience) के रूप में प्रकाश किया—अग्नि द्वारा ऋग्वेद, वायु द्वारा यजुर्वेद, आदित्य द्वारा सामवेद और अङ्गिरा द्वारा अथर्ववेद प्रकट हुए। इन ऋषियों ने संसार के अन्य मनुष्यों में वेदों का प्रचार किया। फिर ऋषि होते गये जिन्होंने वेद मन्त्रों की व्याख्यायें कीं। वेद ईश्वरकृत हैं क्योंकि :—

(i) वेद ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल हैं।

(ii) इनमें किसी व्यक्ति विशेष व जाति विशेष को सम्बोधित न कर सर्वसाधारण को सम्बोधित किया गया है।

(iii) इनमें सृष्टिक्रम विद्या व बुद्धि के विरुद्ध कोई बात नहीं।

(iv) वेद में कुरान और बाइबल की भाँति लौकिक इतिहास व घटनाओं का वर्णन नहीं।

ईश्वर ने वेदों के रूप में ज्ञान, कर्मोपासना और विज्ञान के मूलतत्वों का उपदेश इसलिये कल्याणकारी भावना से किया ताकि मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये यत्न कर सकें। जैसे भौतिक सुख के लिये सूर्य आदि पदार्थ बनाये वैसे ही वेद सर्वांगीन मनुष्य की उन्नति के लिये बनाए।

वेद सनातन प्रभु की वाणी होने से उतने ही पुराने हैं जितनी कि सृष्टि अर्थात् लगभग दो अरब वर्ष। इस से पुराना कोई धर्म शास्त्र नहीं। पांच सहस्र वर्षों के पूर्व वेद मत से भिन्न दूसरा कोई मत संसार में न था। परन्तु अत्यन्त प्राचीन होते हुये भी यह सर्वविद्या सम्पन्न और सार्वदेशिक होने के कारण आज भी उतने ही नवीन हैं जितनी कि कोई और वस्तु।

वेदों में एकेश्वरवाद

वेद एक निराकार ईश्वर की जिसका मुख्य नाम ओ३म् है पूजा करने का आदेश देते हैं किसी अन्य देवी देवता की नहीं। ईश्वर के स्थान पर प्राकृतिक जड़-पदार्थों को उपास्य देव नहीं मानते। इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, वायु आदि अनेक गुणों का बोध कराने वाले ईश्वर के गौण नाम हैं न कि जड़ पदार्थ।

वेद विषय

वेद चार होते हुए भी ज्ञान, कर्म, उपासना भेद से तीन ही मुख्य विषयों का प्रतिपादन करते हैं। ऋग्वेद में ज्ञान काड

अर्थात् ईश्वर से लेकर पृथ्वी और जगत के समस्त पदार्थों का ऐसा बोध कराया गया है जिसके प्राप्त होने से कर्म में प्रवृति और योग्यता होती है। यजुर्वेद में कर्मकांड अर्थात् धर्मयुक्त सांसारिक और पारमार्थिक कर्मों का विधान है जिनका फल उपासना है। सामवेद में उपासना कांड जिसका फल विशेष ब्रह्मविद्या तथा मोक्ष की प्राप्ति है। अथर्ववेद में तीनों वेदों का सारांश रूप तत्व विज्ञान है।

सत्य विद्याओं का पुस्तक

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, संकुचित अर्थ में बाइबल कुरान आदि की तरह मत प्रतिपादक ग्रन्थ नहीं। संसार की सब विद्याएँ वेदों में मूल रूप में विद्यमान हैं और अनुसंधान से प्रकट होती हैं। विज्ञान के उच्च से उच्च सिद्धान्तों का भी वेदों में समावेश है। वेद द्वारा ही हमारे पूर्वजों ने सब वस्तुओं के नाम धरे, अपनी सन्तानों के नाम वेदों के पवित्र एवं सार्थक शब्दों को देखकर रक्खे। इस बात को ध्यान में न रख कर पाश्चात्य विद्वान वेद में भौगोलिक व्यक्तियों, नदियों, जातियों व देशों की कल्पना करते हैं। यह उनकी (वेद विषयक) अनभिज्ञता का सूचक है।

वेद में इतिहास

वेदों का प्रादुर्भाव सृष्टि के आदि में होने के कारण इनमें किसी विशेष मनुष्य की संज्ञा व कथा का प्रसंग आदि इतिहास नहीं। वेद के शब्दों के सत्यार्थ एवं विशेषार्थ को न जानकर ऐतिहासिकों ने व्यर्थ इसमें इतिहास निकालने का प्रयत्न किया है।

वेदों की सार्वभौमिकता

वेदों के उपदेश सार्वभौम हैं वेद एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से जन्म के कारण भेद नहीं करते। इसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान सामाजिक अधिकार दिये गये हैं। शूद्र और छोटी जातियों जिन्हें हम अछूत, दलित, आदिवासी, वनवासी या जंगली कहते हैं, के लिये भी वेद की शिक्षा का द्वार समान रूप से खुला है। वे भी शिक्षा पाकर और अच्छे कर्म करके जब चाहें अपने को ऊँचा उठा सकते हैं। अपने को चाहे ब्राह्मण बना लेवें चाहे क्षत्रिय और चाहे वैश्य। जातियों में जो आज अछूतपन और छोटेपन का भाव पाया जाता है यह सृष्टि के आरंभ की कल्पना न होकर बाद के काल की रचना है और बहुत संभावना है कि यह जातियाँ देश में विदेशियों के आने के बाद बनी हों। "स्त्रियों व शूद्रों को वेद पढ़ने, पढ़ाने और सुनने सुनाने का अधिकार नहीं। यदि शूद्र वेद सुनें तो उसके कान में सीसा भर दो।" यह बात अवैदिक है।

वैदिक जीवन व त्रैतवाद

वेदों में ज्ञान और कर्म की शिक्षा के साथ साथ यह भी निश्चय कर दिया गया है कि उनके साधन क्या हैं। इन के अनुकूल जीवन व्यतीत करने से लोक और परलोक दोनों सुधरते हैं अर्थात् वेद में जहाँ लोकोन्नति के उच्च से उच्च साधन—विमान, जहाज आदि बनाने के उल्लेख हैं वह परलोक की उन्नति अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के साधम भी बतलाये गये हैं।

वेद ईश्वर, जीव और प्रकृति की पृथक सत्ता को स्वीकार करते हैं और तीनों को नित्य मानते हैं। प्रकृति भोग्य, जीव भोगने वाला और ईश्वर साक्षी व वशी है। प्रकृति जगत का जड़ कारण है, जीवात्मा चैतन्य, अल्पज्ञ, कर्म करने में स्वतंत्र परन्तु फल भोगने में परतंत्र है, व ईश्वर चैतन्य, सर्वज्ञ, जगत का रचयिता, कर्म फलदाता और आदि गुणों से सम्पन्न है।

वेद विषयक भ्रम

"वेद गडरियों के गीत हैं। यह ईश्वरकृत नहीं। ऋषि वेद मंत्रों के बनाने वाले थे। वेद में प्रकृति पूजा और दूसरे देवी देवताओं की पूजा का विधान है। यज्ञों में बकरों, घोड़ों, गौओं, तथा मनुष्यों की बलि वेद सम्मत है। वेद में जुआ खेलना, शराब पीना और मांस खाना लिखा है। आर्य लोग कहीं बाहर से आये"—इत्यादि भ्रम जो भारतीय नवयुवकों में वेदों के प्रति घृणा तथा अश्रद्धा के भाव उत्पन्न करते हैं पश्चिमीय विद्वानों और पाश्चात्य विचारधारा की ओर आँख मीच कर दौड़ने वाले देशी विचारकों की निराधार कल्पना हैं। ऐसे भ्रम वेदों का ठीक अर्थ न समझने के कारण होते हैं। ऐसे पाश्चात्य विद्वान अपने सीमित संस्कृत ज्ञान व ईसाइ मत की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने वाली पक्षपात कल्पनाओं के कारण वेदों का विशुद्ध रूप समझने में असमर्थ रहे। उन्होंने ऐसा प्रयत्न किया जिससे हमें वेद का गौरव न हो व वैदिक धर्म की शिक्षाओं का जंगलीपन और ईसाई मत (व विकास-वाद) की श्रेठता प्रकट हो।

वास्तव में वेदों के सिद्धान्त विज्ञान और तत्वज्ञान पर आश्रित हैं। वैदिक ऋषि वेदों का अध्ययन और मनन करके

वेद मंत्रों के अर्थों के द्रष्टा व रहस्यवेत्ता थे। वेद में ईश्वर ही एकमात्र पूजनीय है और कहीं भी ईश्वर के स्थान पर जड़ पूजा, वृक्ष पूजा, जल पूजा, मृतक पूजा, ग्रन्थ पूजा और मनुष्य पूजा नहीं। वेदों में पशुहिंसात्मक यज्ञों, जुआ खेलने, शराब पीने और मांस खाने का समर्थन न होकर सर्वथा निषेध है। (अश्वमेध, गोमेध, नरमेध, सोम आदि शब्दों का अभिप्राय घोड़ों, गौओं और मनुष्यों की यज्ञों में बलि चढ़ाना नहीं है। इसी प्रकार सोम शब्द भक्ति वाचक है) आर्य लोग कहीं बाहर से नहीं आये किन्तु भारत देश के मूल निवासी हैं। संसार की आज सभ्य कहीजाने वाली जातियाँ जब पेड़ों और कन्दराओं में रहती थीं आर्य जाति उन्नति के शिखर पर थी, इतिहास इस बात का साक्षी है।

वेद स्वतः प्रमाण

वेदविद्या धर्मयुक्त और ईश्वर प्रणीत होने से निर्भ्रान्त और स्वतः प्रमाण हैं। इनके भिन्न ग्रन्थ (उपवेद, वेदांग, उपांग, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि) ऋषि प्रणीत होने से परतः प्रमाण हैं अर्थात् जहाँ तक यह ग्रंथ वेद अनुकूल हैं प्रमाण और मान्य हैं और जो इन में वेद विरुद्ध वचन हैं वे अप्रमाण और मानने के योग्य नहीं।

अन्तिम निवेदन

वेद की शिक्षा के अनुसार चलने से संसार कलह के स्थान पर शान्ति का धाम बन सकता है। इसी कारण वेद का श्रवण और अध्ययन करना आर्यों (श्रेष्ठ पुरुषों) का धर्म ही नहीं परम धर्म है।

हमें चाहिये कि ऐसे पवित्र वेदों को जिनके बारे में ऊपर लिखा गया है पढ़ें, पढ़ायें, सुनें, सुनायें और अन्य प्रकार से इनका संसार में प्रचार करें। वेद के बारे में अपना ज्ञान सतसंग और स्वाध्याय से बढ़ायें तथा अपने वेद प्रेम का परिचय व सन्देश वेद की शिक्षाओं को अपने जीवन में लाकर दें। जो पूरे वेद नहीं पढ़ सकते वे ऐसी पुस्तकें पढ़ें जिनमें वेदों की शिक्षा दी गई हो। राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण गुप्त के शब्दों में—

> आओ बनें शुभ साधना के आज से साधक सभी,
> धर्म की रक्षा करें, जीवन सफल होगा तभी।
> संसार अब देखे कि यदि हम आज हैं पिछड़े पड़े,
> तो कल बराबर और परसों विश्व के आगे खड़े।

(जो वेदों के बारे में अधिक जानना चाहें वे स्वामी दयानन्दकृत सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वेदों का यथार्थ स्वरूप (पं० धर्मदेव कृत) आदि वेद विषयक ग्रन्थ पढ़ें)

मुद्रक—इलाहाबाद प्रेस, कृष्ण नगर, इलाहाबाद

प्रथम माला]　　　　ओ३म्　　　　[संख्या २६

आर्य्य समाज क्या है ?

लेखक

गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०

प्रकाशक

ट्रैक्ट विभाग

आर्य्यसमाज चौक, प्रयाग ।

संशोधित संस्करण ५००० } सम्वत् २०२२ वि० १९६६ ई० { मूल्य १० पैसा ६) सैंकड़ा

ओ३म

आर्य्य समाज क्या है?

आर्य्य शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ या अच्छा और समाज का अर्थ है सभा या संघ। इसलिए 'आर्य्य समाज' का अर्थ हुआ अच्छे आदमियों की सभा।

'आर्य्य समाज' को महर्षि दयानन्द ने अप्रैल १८७५ ई० अर्थात् चैत सुदी ५ सम्वत् १९३२ वि० को बम्बई में खोला था। इसके पश्चात् भारतवर्ष के प्रत्येक नगर और बड़े ग्राम में समाज खुल गए। इस समय संसार भर के समाजों की संख्या ३००० से अधिक है।

आर्य्य समाज के नियम यह हैं :—

(१) सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

(३) वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है; वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।

(४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए ।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें ।

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

(७) सब से प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य बर्तना चाहिये ।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझना चाहिये ।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

इन नियमों के देखने से इन बातों का पता चलता है :—

(१) ईश्वर एक है ।

(२) वेद ईश्वर का ज्ञान है इसलिए आर्य्यों को वेद पाठ अवश्य करना चाहिये।

(३) यदि कभी मालूम हो जाय कि जो बात हम मानते या करते हैं वह असत्य हैं तो उसको छोड़ देना चाहिये। पक्षपात न करना चाहिये।

(४) समाज की भलाई के लिए हर एक को कोशिश करनी चाहिए।

आर्य्य समाज के सिद्धान्त

ईश्वर विषयक

(१) ईश्वर एक है; कई ईश्वर नहीं।

(२) ईश्वर निराकार है। उसको आँख से नहीं देख सकते और न उसकी मूर्ति बना सकते हैं।

(३) ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। वह सब कुछ जानता है और छोटी सी छोटी चीज के भी भीतर और बाहर मौजूद है।

(४) ईश्वर सर्व-शक्तिमान् है। अथात वह अपने किसी काम के करने के लिए आँख, कान, नाक आदि शरीर या अन्य किसी औजार की जरूरत नहीं समझता। जो कुछ करता है बिना किसी चीज या आदमी की सहायता के करता है। जीव और प्रकृति को अनादि मानने से ईश्वर पराश्रित या मुहताज नहीं होता।

जीव और प्रकृति ईश्वर के उपकरण नहीं हैं। उपादान उपकरण नहीं होता।

(५) ईश्वर अजन्मा और निर्विकार है। वह मनुष्य के समान जन्म-मरण में नहीं आता। अवतार भी नहीं लेता। राम, कृष्ण, आदि ईश्वर के अवतार नहीं थे। वे धर्मात्मा पुरुष थे, इसलिए उनके अच्छे कामों को याद करनी चाहिये और उनका अनुकरण करना चाहिये परन्तु उनकी मूर्तियों को ईश्वर समझ कर नहीं पूजना चाहिये।

जीव विषयक

(१) जीव चेतन है। इसकी संख्या अनन्त है।

(२) जीव न कभी मरता है न पैदा होता है। अर्थात कभी ऐसा समय नहीं हुआ जब जीव न रहा हो और न ऐसा समय आवेगा जब जीव न रहेगा।

(३) जीव में ज्ञान तो है, पर थोड़ा। और शक्ति भी थोड़ी है, इसलिए जीव को अल्पज्ञ कहते हैं।

(४) जीव शरीर धारण करता है। कभी मनुष्य का कभी पशु का, कभी कीड़े आदि का।

(५) जीव जैसा कर्म करता है उसको उसके फल के अनुसार वैसा ही शरीर मिलता है। बुरे कर्म के लिए बुरी योनि और अच्छे कर्म के लिए अच्छी योनि मिलती है। इसी को जीव-

अवतार कहते हैं। अवतार जीव का होता है ईश्वर का नहीं।

(६) जीव जब अच्छे कर्म करते करते सबसे ऊँची अवस्था को पहुँच जाता है तो उसे मोक्ष मिल जाता है अर्थात शरीर नहीं रहता और वह स्वतन्त्र विचरता हुआ ईश्वर के आनन्द में मग्न रहता है।

(७) मोक्ष ३१ नील १० खर्ब ४० अर्ब वर्ष के लिए होता है। इसके पश्चात् जीव मोक्ष से लौटता है और उत्तम ऋषियों का शरीर धारण करता है। इस शरीर में यदि अच्छे काम करता है तो फिर मुक्त हो जाता है। और यदि बुरे कर्म करता है तो नीचे की योनियों का चक्र आरम्भ हो जाता है।

प्रकृति विषयक

(१) प्रकृति छोटे-छोटे परमाणुओं का नाम है।

(२) यह परमाणु जड़ हैं। इनमें ज्ञान नहीं।

(३) यह परमाणु अनादि और अनन्त हैं। अर्थात न कभी उत्पन्न हुए न नष्ट हुए।

(४) ईश्वर इन्हीं परमाणुओं को जोड़कर सृष्टि बनाता है। आग पानी और पृथ्वी यह इन्हीं परमाणुओं के संयोग का फल है। सूर्य, चाँद आदि इन्हीं से बने हैं हमारे शरीर भी इन्हीं परमाणुओं से बने हैं।

(५) जब परमाणु अलग-अलग हो जाते हैं तो उसको प्रलय या ब्रह्मरात्रि कहते हैं। जब सृष्टि बनी रहती है तो ब्रह्मदिन होता है।

वेद

(१) वेद चार हैं। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद।

(२) वेदों का ज्ञान ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों को दिया। अर्थात—

अग्नि ऋषि को ऋग्वेद।
वायु ऋषि को यजुर्वेद।
आदित्य ऋषि को सामवेद।
अंगिरा ऋषि को अथर्ववेद।

(३) इन ऋषियों ने वेदों का अन्य ऋषियों और मनुष्यों को उपदेश दिया। संसार भर की सब विद्याएँ वेदों से ही निकलती हैं।

(४) वेद स्वतः प्रमाण हैं परन्तु अन्य पुस्तकें परतः प्रमाण। अर्थात् जो बात उनमें वेद के अनुकूल हैं वह ठीक हैं जो वेद विरुद्ध है वह गलत।

(५) वेद संस्कृत भाषा में नहीं हैं। किन्तु देववाणी में हैं। संस्कृत भाषा वेदों की भाषा से निकली है और अन्य सब भाषाएं संस्कृत से।

(६) वेदों में इतिहास नहीं है। वेदों में यौगिक शब्द हैं, रूढ़ि नहीं। अर्थात् वेदों में ऐसे शब्द आये हैं जो हमको मनुष्यों के से नाम मालूम होते हैं। परन्तु उनके और अर्थ थे। वह मनुष्य न थे।

(७) वेदों में राम, कृष्ण आदि अवतारों का वर्णन नहीं है।

(८) वेदों में मुख्यतः तीन बातें हैं—ईश्वर के लिए भिन्न-भिन्न अवसरों के अनुकूल प्रार्थनायें, सृष्टि के नियम, मनुष्यों को उपदेश।

(९) वेदों में इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि शब्द कहीं ईश्वर के लिए आये हैं और कहीं भौतिक पदार्थों जैसे आग पानी आदि के लिए। इसका पता संगति से लग सकता है।

(१०) पहले संसार भर में वेद मत ही था। पीछे से भिन्न-भिन्न मत हो गये।

अन्य शास्त्र

आर्य्य समाज वेदों को तो ईश्वर कृत मानता है। परन्तु इनके अतिरिक्त नीचे लिखे ऋषियों के ग्रन्थों को भी उस हद तक प्रमाणिक मानता है जिस हद तक वह वेदों के अनुकूल हों :—

(१) चार ब्राह्मण ग्रन्थ :— ऐतरेय, साम, शतपथ और गोपथ।

(२) ग्यारह उपनिषद :—ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, प्रश्न और श्वेताश्वतर।

(३) छः दर्शन :—गौतम ऋषि का न्याय, कणाद ऋषि का वैशेषिक, कपिल ऋषि का सांख्य, पतञ्जलि ऋषि का योग, जैमिनी ऋषि का पूर्व मीमांसा और व्यास ऋषि का उत्तर मीमान्सा या वेदान्त।

(४) मानव धर्मशास्त्र या मनुस्मृति।

(५) गोभिल गृह्यसूत्र, पारस्कर, गृह्यसूत्र, आश्वलायन गृह्यसूत्र।

(६) स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका आदि।

मनुष्य समाज

(१) पहले पहले मनुष्य तिब्बत में उत्पन्न हुए, वहाँ से सब जगह फैल गये। आर्य्य जाति से पहले और कोई जाति नहीं थी। आर्य्य जाति के ही भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न नाम हो गये हैं।

(२) पहले पहल एक आदमी और एक औरत नहीं किन्तु बहुत से युवक आदमी और बहुत सी युवक औरतें पैदा हुई थीं। फ़िर इन्हीं की सन्तान आपस में विवाह करके बढ़ गईं।

(३) सब मनुष्य जन्म से समान हैं। गुण, कर्म स्वभाव के अनुसार उनके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नाम होते हैं।

(४) पढ़ने-पढ़ाने वाले नेताओं का नाम ब्राह्मण है, शारीरिक रक्षा करने वालों का क्षत्रिय, व्यापार और कला कौशल करने वालों का वैश्य, जैसे काछी, माली, ठठेर, तेली, कुम्हार, सुनार, बढ़ई, लुहार, थवई, इन्जीनियर, हलवाई, बजाज आदि। जो सेवा करते हैं वह शूद्र है। वर्ण बदल सकता है अर्थात् शूद्र ब्राह्मण हो सकता है और ब्राह्मण शूद्र।

(५) शूद्र का काम नीच नहीं है और न उससे किसी को घृणा करनी चाहिये।

(६) वेद का अधिकार सबको है।

यज्ञ

पाँच यज्ञ हर आर्य्य को प्रतिदिन करने चाहिये :—

(१) ब्रह्म यज्ञ अर्थात् ईश्वर की पूजा और वेद पाठ।

(२) देव यज्ञ अर्थात् हवन।

(३) भूत यज्ञ अर्थात् चींटी, गाय, कुत्ता आदि आश्रित जीवों को भोजन देना।

(४) पितृ यज्ञ, अर्थात् जीवित् माता पिता का सत्कार। मरे हुए माता पिता का सत्कार करना असम्भव है। इसलिए मृतकों का श्राद्ध, तर्पण नहीं करना चाहिये।

(५) अतिथि, अथात् साधु संन्यासी आदि आयें तो उनका सत्कार करना।

संस्कार

प्रत्येक आर्य्य के सोलह संस्कार होने चाहिये :—

तीन जन्म से पहले (१) गर्भाधान (२) पुंसवन (३) सीमन्तोन्नयन ।

छः बचपन में (१) जात कर्म (२) नामकरण (३) निष्क्रमण (४) अन्न प्राशन (५) मुण्डन (६) कर्णवेध ।

दो विद्या पढ़ना आरम्भ करने के समय (१) यज्ञोपवीत (२) वेदारम्भ ।

दो विद्या समाप्त करने पर (१) समावर्त्तन (२) विवाह ।

तीन पिछली अवस्था में (१) वानप्रस्थ (२) संन्यास (३) अन्त्येष्टि ।

विवाह

(१) विवाह कम से कम लड़की का सोलह वर्ष की अवस्था में और लड़के का पच्चीस वर्ष की अवस्था में करना चाहिये ।

(२) एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह कर सकता है ।

(३) अक्षतयोनि विधवा का अक्षतवीर्य्य पुरुष के साथ विवाह ठीक है ।

(४) यदि आवश्यकता हो, क्षतयोनि विधवा का क्षतयोनि पुरुष के साथ विवाह हो सकता है ।

आर्य्य समाज का संगठन

(१) कम से कम नौ सभासदों का एक समाज होता है ।

(२) प्रत्येक सभासद को अपनी आय का शतांश (सैकड़ा पर एक) चन्दे में देना पड़ता है ।

(३) शतांश चन्दा न देने वाले तथा सदाचार से न रहने वाले सभासदों से पृथक किये जा सकते हैं।

(४) प्रान्त के समाजों को संगठित करने के लिये प्रान्तीय प्रतिनिधि सभायें हैं। जिनमें प्रत्येक समाज के प्रतिनिधि जाते हैं। प्रतिनिधि भेजने का नियम है कि प्रति ३५ सभासद या किसी विशेष काम के लिये एक प्रतिनिधि भेजा जाता है।

(५) प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा के प्रबन्ध के लिये एक अन्तरङ्ग सभा होती है।

(६) प्रतिनिधि सभाओं के चुने हुये सभासदों की सार्वदेशिक सभा है जिसका स्थान दिल्ली में है।

आर्य्य समाज का काम

(१) शिक्षा का कार्य—भारत में अंग्रेजी शासन की नीति थी कि अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारतीयों को पाश्चात्य सभ्यता में रंग दिया जाए ताकि वे अपनी संस्कृति से विमुख हो जाएं इसी उद्देश्य से देश में स्थान २ पर अंग्रेजी विद्यालय खोले गए। आर्य्य समाज ने देश में भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए सर्व प्रथम पाठशालाएं, गुरुकुल और कालेज खोले। इस समय आर्य्य समाज के आधीन भारतवर्ष में छोटे-बड़े सब मिला कर कई हजार विद्यालय हैं और इन पर करोड़ों रुपया व्यय होता है। बड़े-बड़े विद्यालयों के नाम यह हैं :—डी० ए० वी० कालेज जालन्धर,

गुरुकुल काङ्गड़ी, गुरुकुल वृन्दावन, कन्या महाविद्यालय जालन्धर, डी० ए० वी० कालेज डेहरादून, डी० ए० वी० कालेज कानपुर, महाविद्यालय ज्वालापुर, हंसराज कालेज दिल्ली, आदि।

(२) अनाथालय—५० अनाथालय, जिनमें अनाथ बच्चे पाले जाते हैं, खोले गए जैसे कि फीरोजपुर, अजमेर, आगरा, बरेली, लखनऊ आदि।

(३) स्त्री जाति का सम्मान—आर्य्य समाज से पूर्व स्त्री जाति के प्रति बड़े संकुचित विचार थे। उनको वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था और नीच व अपवित्र समझा जाता था। आर्य्य समाज ने वेद शास्त्रों से यह बताया कि नारी को भी वेद पढ़ने का अधिकार है और उसका शिक्षित होना आवश्यक है क्योंकि वास्तव में माता बालक को बनाने वाली है। इसके लिए कन्या गुरुकुल, कन्या पाठशालाएं और विधवा आश्रम जिनके द्वारा विधवाओं की सहायता होती है खोले और हजारों विधवाएं इस प्रकार पतित होने से बचा लीं। आर्य्य समाज ने पुरुष और स्त्री के समान अधिकार बताये और इस प्रकार स्त्री जाति को सम्मान दिया।

(४) हिन्दी का प्रचार—हिन्दी आज राष्ट्र भाषा के पद पर सुशोभित है। इसकी उन्नति का श्रेय जिन संस्थाओं को है, उनमें आर्य्य समाज का स्थान सबसे ऊँचा है। भारतवर्ष में कई भाषाएं बोली जाती हैं जो देश की एकता में बाधक हैं। महर्षि

दयानन्द ने स्वयं गुजराती व संस्कृत का विद्वान् होते हुये भी सबसे पहले यह अनुभव किया कि राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दी ही राष्ट्र भाषा हो सकती है। उन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार के लिए हिन्दी को अपनाया, अपने सभी ग्रन्थ हिन्दी में लिखे और प्रत्येक आर्य्य समाजी के किए हिन्दी जानना अनिवार्य बताया।

(५) शुद्धि आन्दोलन—आर्य्य समाज की स्थापना के पूर्व हजारों हिन्दू विधर्मी हो रहे थे। एक बार धोखे से भी यदि कोई हिन्दू किसी मुसलमान के हाथ का छुआ भोजन खा लेता तो वह मुसलमान समझा जाता था और पुनः हिन्दू धर्म में नहीं आ सकता था। आर्य्य समाज ने शुद्धि आन्दोलन चलाया और उन भाइयों को जो कभी मुसलमान या ईसाई हो गए थे हिन्दू धर्म में वापस लिया। अब तक हजारों ऐसे मुसलमान और ईसाई शुद्ध किए जा चुके हैं।

(६) बाल विवाह और बूढ़ों का विवाह रोकने में आर्य्य समाज ने बड़ा काम किया है।

(७) सच्ची जीवरक्षा की ओर समाज ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। हजारों लोग जो पहले मांस और शराब का सेवन करते थे, अब इन बुरी वस्तुओं को छोड़कर पवित्र आहार ग्रहण करने लगे हैं।

(८) हवन की प्रथा बन्द हो गई थी यह फिर जारी की गई है।

(९) अछूतोद्धार— आर्य्य समाज की स्थापना से पूर्व शूद्रों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता था। उन्हें पढ़ने नहीं दिया जाता था। यहां तक कि उन्हें सार्वजनिक स्थानों जैसे कुआं, मन्दिर आदि पर चढ़ने नहीं भी दिया जाता था फलस्वरूप बड़ी संख्या में अछूत कहे जाने वाले भाई ईसाई व मुसलमान बनते जा रहे थे। आर्य्य समाज ने उनको वेद तक पढ़ने का अधिकार दिलाया और स्थान २ पर उनके लिए पाठशालाएं खोलीं। आर्य्य समाज ने सबसे पहले अछूतोद्धार आंदोलन चलाया जिसे बाद में महात्मा गांधी ने बल दिया।

(१०) वेदों का प्रचार बढ़ाया।

आइये, ऐसी आर्य्य समाज के सभासद् बनिये क्योंकि इसी से देश का कल्याण होगा।

नोट—जो आर्य्य समाज के बारे में अधिक जानना चाहें निम्नलिखित पुस्तकें पढ़ें :—

सत्यार्थ प्रकाश—महर्षि दयानन्द कृत।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका—महर्षि दयानन्द कृत।

आर्य्य समाज क्या है—महात्मा नारायण स्वामी कृत।

आर्य्य समाज के नियमों की व्याख्या—स्वामी सत्यानन्द कृत।

———

आर्य्य समाज के उपकार

है केवल आर्य्य सभाज, सब को भलाई चाहने वाला ॥है०॥
होवे जहाँ किसी की हान, वहाँ पर होता यह बलिदान ।
अर्पण करके अपने प्राण, सबका धर्म बचाने वाला ॥है०॥

जहां पर लाखों हिन्दू भाई, बनते मुसलमान ईसाई ।
आखिर हुआ है यही सहाई, उनको गले लगाने वाला ॥है०॥
देश में लाखों विधवा नार, निशिदिन करतीं हा हा कार ।
फैला हुआ था अत्याचार, उनको यही बचाने वाला ॥है०॥

जब उजड़ा था बीकानेर, मचा था चारों ओर अंधेर ।
वहां पहुंचा था यह ही शेर, मरतों को बचाने वाला ॥है०॥
मोपले कई हुये बेइमान, बरजोरी करे थे मुसलमान ।
पहुंचा मालावार उस आन, दुखियों को धीर बंधाने वाला ॥है०॥

सच पूछो तो आर्य्य समाज, रखता भारतवर्ष की लाज ।
तो भी बुरा कहें मूर्ख आज, यही था सबको जगाने वाला ॥है०॥
जो तुम चाहते हो कल्याण, इसके अर्पण कर दो प्राण ।
वैदिक धर्म में आवे जान, बिनती करे टोहाने वाला ॥है०॥

मुद्रक—राष्ट्रीय मुद्रणालय, ५ सम्मेलन मार्ग, प्रयाग ।

ओ३म्

खण्डन-मण्डन ग्रन्थमाला-पुष्प सं० ६५

चोटी

(धार्मिक और वैज्ञानिक महत्व)

लेखक—

आचार्य डा० श्रीराम आर्य

प्रकाशक—

वैदिक साहित्य प्रकाशन

कासगंज (उ० प्र०) भारत

दयानन्दाब्द १५६

दूसरी बार] आर्य संवत् १९७२९४९०८१ मूल्य

सन् १९८१ ई० २० पैसे

ओ३म्

शिखा (चोटी)

धार्मिक एवं वैज्ञानिक महत्व

वैदिक धर्म में सर पर शिखा (चोटी) धारण करने का असाधारण महत्व है। प्रत्येक बालक के जन्म के बाद मुण्डन संस्कार के पश्चात् सर के उस भाग पर गौ के नव जात बच्चों के खुर के प्रमाण आकार की चोटी रखने का विधान है। यह वही स्थान सर पर होता है जहां सुषुम्ना नाड़ी पीठ के मध्य भाग में होती हुई ऊपर की ओर आकर समाप्त होती है और उसमें से सर के विभिन्न अङ्गों के वात संस्थान का संचालन करने को अनेक सूक्ष्म वात नाड़ियों का प्रारम्भ होता है। सुषुम्ना नाड़ी सम्पूर्ण शरीर के वात संस्थान का संचालन करती है। दूसरे शब्दों में उसी से वात संस्थान प्रारम्भ व संचालित होता है। यदि इसमें से निकलने वाली कोई नाड़ी किसी भी कारण से सुस्त पड़ जाती है तो उस अङ्ग को फालिज मारना कहते हैं। समस्त शरीर को शक्ति सुषुम्ना नाड़ी से ही मिलती है।

सर के जिस भाग पर चोटी रखी जाती है उसी स्थान पर अस्थि के नीचे लघुमस्तिष्क का स्थान होता है जो गौ के नव जात बच्चों के खुर के ही आकार का होता है और शिखा भी उतनी ही बड़ी उसके ऊपर रखी जाती है। बाल गर्मी पैदा करते हैं। बालों में विद्युत का संग्रह रहता है जो सुषुम्ना नाड़ी को उतनी ऊष्मा हर समय प्रदान करते रहते हैं जितनी कि उसे समस्त शरीर के वात नाड़ी संस्थान को जागृत वा उत्तेजित रखने की आवश्यकता होती है। इसका परिणाम यह होता है कि मानव का वात नाड़ी संस्थान आवश्यकतानुसार जागृत रहता है। समस्त शरीर को बल देता है। किसी भी अंग में फालिज गिरने का भय नहीं रहता

है। और साथ ही लघु मस्तिष्क विकसित होता रहता है जिसमें जन्म जन्मान्तरों के एवं वर्तमान जन्म के संस्कार संग्रहीत रहते हैं, यह परीक्षण करके देखा गया है कि बड़ी गुच्छेदार शिखा धारण करने वाले दाक्षिणीय ब्राह्मणों के मस्तिष्क शिखा न रहने वाले ब्राह्मणों की अपेक्षा विशेष विकसित पाये गये हैं। यह परीक्षण अनेक वैज्ञानिकों ने दक्षिण भारत में किया था। सुषुम्ना का जो भाग लघुमस्तिष्क को संचालित करता है। वह उसे शिखा द्वारा प्राप्त ऊष्मा (विद्युत) से चैतन्य बनाता है। इससे स्मृति शक्ति भी विकसित होती है।

वेद में शिखा धारण करने का विधान कई स्थानों पर मिलता है।

"शिखिभ्य: स्वाहा" अथर्ववेद १६–२२–१५"

अर्थ—चोटी धारण करने वालों का कल्याण हो।

"यशसेश्रियै शिखा" ।। यजु १६ । ६२ ।।

यश और लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए सर पर शिखा धारण करे।

याज्ञिकैगौर्दाणि मार्जनि गोक्षुर्वच्च शिखा ।।यजुर्वेदीय कठशाख।

अर्थात सर पर यज्ञाधिकार प्राप्त को गौ के खुर के बराबर स्थान में चोटी रखनी चाहिये।

नोटः—गौ के खुर प्रमाण से तात्पर्य है गाय के पैदा होने के समय बछड़े के खुर के बराबर स्थान पर सर पर चोटी धारण करे।

केशानां शेष करणं शिखास्थापनं केश शेष करणम्। इति मंगल हेतो:।

(पारस्कर गृ०सू)

मुण्डन संस्कार के बाद जब भी बाल सर के कटावे तो चोटी के बालों को छोड़ कर शेष बाल कटावे, यह मंगल कारक होता है।

सदोपवीतिना भाव्यं सदा वद्धशिखेन च ।
बिशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत्कृतम् ।।

कात्यायन स्मृति १।४।

अर्थ—यज्ञोपवीत सदा धारण करे तथा सदा चोटी में गांठ लगा कर रखे । बिना शिखा व यज्ञोपवीत के कोई यज्ञ सन्ध्योपासनादि कृत्य न करे अन्यथा वह न करने के ही समान है।

बड़ी शिखा धारण करने से वीर्य की रक्षा में भी सहायता मिलती है । शिखा बल-आयु तेज-बुद्धि-लक्ष्मी व स्मृति को संरक्षण प्रदान करती हैं। एक अँग्रेज डाक्टर विक्टर ई क्रोमर ने अपनी पुस्तक विरिल कल्पक में लिखा है जिसका भावार्थ निम्न प्रकार है—

ध्यान करते समय ओज शक्ति प्रकट होती है । किसी वस्तु पर चिन्तन शक्ति एकाग्र करने से ओज शक्ति उसकी ओर दौड़ने लगती है । यदि ईश्वर पर ध्यान एकाग्र किया जावे तो मस्तिष्क के ऊपर शिखा के चोटी के मार्ग से ओज शक्ति प्रकट होती है वा प्रवेश करती है परमात्मा की शक्ति इसी मार्ग से मनुष्य के भीतर आया करती हैं । सूक्ष्म दृष्टि संपन्न योगी इन दोनों शक्तियों के आसाधारण सुन्दर रंग भी देख लेते हैं । जो शक्ति परमात्मा के द्वारा मस्तिष्क में आती है वह वर्णनातीत है ।

प्रोफेसर मैक्समूलर ने भी लिखा था—

The Concentration of mind upwards sends a rush of this power through the of the head.

अर्थात—शिखा द्वारा मानव मस्तिष्क सुगमता से इस ओज शक्ति को धारण कर लेता है । श्री हाप्यवन ने भारत भ्रमण के पश्चात् एक लेख में गाडं पत्रिका नं० २५८ में लिखा था ।

For a long time in India I studied on Indian civilizaton and tradition southern Indians cut their hair up to half head only. I was highly effected by their mentality. I assert that the hair tuft on head is very useful in Culture of mind. I also believe in Hindu religion now I am very particular about hair tuft.

अर्थात्-भारत में कई वर्षों तक रह कर मैंने भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं का अध्ययन किया। दक्षिण भारत में आधे सर तक बाल रखने की प्रथा है। उन मनुष्यों की बौद्धिक विलक्षणता से मैं प्रभावित हुआ। निश्चित रूप से शिखा बौद्धिक उन्नति में बहुत सहायक है। मेरा तो हिन्दू धर्म में अगाध विश्वास है और अब मैं चोटी धारण करने का कायल हो गया हूँ।

इसी प्रकार सरल्यूकस वैज्ञानिक ने लिखा हैं—

"शिखा का शरीर के अङ्गों से प्रधान सम्बन्ध है। उसके द्वारा शरीर की बृद्धि तथा उसके तमाम अंङ्गों का संचालन होता है। जब से मैंने इस वैज्ञानिक तथ्य का अन्वेषण किया है मैं स्वयं शिखा रखने लगा हूँ।"

जिस स्थान पर सर पर शिखा होती है उसे Pinial Joint कहते हैं। उसके नीचे एक ग्रन्थि होती हैं जिसे Pituitary कहते हैं। इससे एक रस बनता है जो संपूर्ण शरीर व बुद्धि को तेज सम्पन्न तथा स्वस्थ एवं चिरंजीवी बनाता है। इसकी कार्य शक्ति चोटी के बड़े वालों व सूर्य की प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है। मूलाधार से लेकर समस्त मेरु मण्डल में व्याप्त सुषुम्ना नाड़ी का एक मुख ब्रह्मरन्ध्र(बुद्धि केन्द्र) में खुलता है। इसमें से तेज (विद्युत) निर्ग-

मन होता रहता है। शिखा बन्धन द्वारा यह रुका रहता है। इसी कारण से शास्त्रकारों ने शिखा में गांठ लगाकर रखने का विधान किया है।

डाक्टर क्लार्क ने लिखा है—"मुझे विश्वास हो गया है कि हिन्दुओं का हर एक नियम विज्ञान से भरा है। चोटी रखना हिन्दुओं का धार्मिक चिन्ह ही नहीं बल्कि सुषुम्ना की रक्षा के लिये ऋषियों की खोज का विलक्षण चमत्कार है।"

अर्ल टामस ने सन् १८८१ में अलार्म पत्रिका के विशेषांक में लिखा था—

Hindus keep safety of Medulla oblongle by lock of hair. It is superior than other religious experiments. Any way the safety of oblongle is essential.

अर्थात्—सुषुम्ना की रक्षा हिन्दू शिखा रख कर करते हैं। अन्य धर्म के कई प्रयोगों में चोटी सबसे उत्तम है। किसी भी प्रकार सुषुम्ना की रक्षा आवश्यक है।"

गुच्छेदार चोटी बाहरी उष्णता को अन्दर आने से रोकती है और सुषुम्ना व लघुमस्तिष्क तथा सम्पूर्ण स्नायविक संस्थान की गर्मी से रक्षा करती है और शारीरिक विशेष उष्णता को वाहर निकाल देती है। हां, यदि अत्यन्त उष्ण प्रदेश हो तो शिखा न रखना भी हानि कारक नहीं होगा।

सन्यासी (चतुर्थ आश्रमी) को शिखा न रखने का आदेश इस आधार पर है कि उसने तीन आश्रमों में उसे रख कर शरीर को पुष्ट कर लिया होता है और चौथे आश्रम में वह योगाभ्यास द्वारा वात नाड़ी संस्थान को पुष्ट करता रहता है अतः उसके लिये शिखा विहित नहीं रह जाती है।

इस प्रकार वैदिक धर्म में शिखा वैज्ञानिक-आयुर्वेदिक तथा धार्मिक दृष्टि से मानव मात्र के लिये अत्यन्त उपयोगी है। किन्तु उससे लाभ तभी होगा जब कि शास्त्रादेश के अनुसार—गौ खुर के बरावर की रख कर उसे बड़ा किया व ग्रन्थि लगा कर रखा जावेगा।

जापानी पहलवान अपने सिर पर मोटी चोटी गांठ लगाकर धारण करते हैं यह भारतीय परम्परा जापान में आज भी विद्यमान देखी जा सकती हैं।

चोटी के बाल वायु मण्डल में से प्राणशक्ति (आक्सीजन) को आकर्षण करते हैं और उसे शरीर में स्नायविक संस्थान के माध्यम से पहुँचाते हैं। इससे ब्रह्मचर्य के संयम में सहायता मिलती है। जब कि शिखाहीन व्यक्ति कामुक व उछृंखल देखे जाते हैं। शिखा मस्तिष्क को शान्ति रखती है तथा प्रभु चिन्तन में साधक को सहायक होती है। शिखा गुच्छेदार रखने व उससे गांठ बांधने के कारण प्राचीन आर्यों में ब्रह्मचर्य-तेज-मेधादीर्घायु तथा बल की विलक्षणता मिलती थी। जब से अँग्रेजी कुशिक्षा के प्रभाव में भारतवासियों ने शिखा व सूत्र का परित्याग करना प्रारम्भ कर दिया है उनमें वह शीर्षस्थ गुणों का निरन्तर ह्रास होता चला जा रहा है। पागलपन-अन्धत्व तथा मस्तिष्क के रोग शिखाधारियों को नहीं होते थे वे अब शिखाहीनों में बहुत देखे जा सकते हैं।

जिस शिखा व सूत्र की रक्षा के लिए लाखों भारतीयों ने विधर्मियों के साथ युद्धों में प्राण देना उचित समझा, अपने बलि-दान दिये। महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह धर्मवीर हकीकतराय आदि सहस्त्रों भारतीयों ने चोटी जनेऊ की रक्षार्थं आत्म बलिदान देकर भी इनकी रक्षा मुस्लिम शासन के

कठिन काल में की उसी चोटी जनेऊ को आज का बाबू टाइप का अँग्रेजीयत का गुलाम अपने सांस्कृतिक चिन्ह (चोटी जनेऊ) को त्यागता चला जा रहा है कितने दु:ख की बात है। उसे इन परमोपयोगी धार्मिक एवं स्वास्थ्य वर्धक प्रतीकों को धारण करने में ग्लानि व हीनता लगती हैं परन्तु अँग्रेजी गुलामी की निशानी ईसाईयत की वेषभूषा पतलून पहिन कर खड़े से मूतने में कोई शर्म अनुभव नहीं होती है जो कि स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हानिकारक है तथा भारतीय दृष्टि से घोर असभ्यता की निशानी है। जहां चाहे खड़े होकर स्त्रियों बच्चों-अन्य पुरुषों की उपस्थिति का ध्यान किये बिना मूतने लगता है जब कि टट्टी और पेशाब छिपकर आड़ में एकान्त स्थान में करने की भारतीय परम्परा है।

प्रश्न–यदि केवल चोटी न रखकर समस्त सिर पर लम्बे बाल रखे जावें तो क्या हानि होगी ?

उत्तर–तालु भाग पर लम्बे बालों से स्मृति शक्ति कम हो जावेगी, दाहिने कान के ऊपर सिर पर लम्बे बालों से जिगर को हानि होगी व वांयें कान के ऊपर के भाग पर रखने से प्लीहा को नुकसान पहुँचेगा। स्त्रियों के सर पर लम्बे बाल होना उनके शरीर की बनावट तथा उनके शरीरगत विद्युत के अनुकूल रहने से उनको अलग से चोटी नहीं रखनी चाहिए। उनका बाल फैशन के चक्कर में पड़कर कटाना अति हानिकारक रहता है। अतः स्त्रियों को बाल नहीं कटाने चाहिये।

देशबन्धु प्रिन्टिङ्ग प्रेस, हाथरस फोन नं० ५१७

प्रथम माला] ओ३म् [संख्या ३५

संस्कार

महर्षि दयानन्द सरस्वती

लेखक

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

प्रकाशक

गंगाप्रसाद उपाध्याय ट्रैक्ट विभाग,
आर्य समाज, चौक, प्रयाग

मूल्य २५ पैसे] १९७५ ई० [२०-०० रु० सैकड़ा

ओ३म्

संस्कार

'संस्कार' शब्द संस्कृत भाषा के 'सम्' उपसर्ग और 'कृ' धातु से बना है। इसका अर्थ है अच्छा बनाना या शुद्ध करना मनुष्य के बाहरी या भीतरी व्यापार का उसके मन पर जो प्रभाव पड़ता है उसको भी संस्कार कहते हैं जैसे मोम के ऊपर किसी लकड़ी या कील से चिह्न बन जाते हैं इसी प्रकार मन पर भी आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियों द्वारा बाहरी पदार्थों के या भीतरी विचारों के चिह्न बन जाते हैं—यह चिह्न ही संस्कार हैं। जिस समय से बच्चे का शरीर बनना आरम्भ होता है उसी समय से उसके मन पर संस्कार भी पड़ने लगते हैं और वह शरीर के भावी निर्माण तथा विकास में सहायता देते हैं। कुसंस्कार अर्थात् बुरे संस्कार से बुरा शरीर बनता है और आगे के संस्कार भी बुरे ही बनते हैं। अच्छे संस्कारों से शरीर भी अच्छा बनता है और आगे के संस्कार भी अच्छे होते हैं।

इसके लिये एक उदाहरण पर्याप्त होगा। एक मनुष्य पहली बार शराब की दुकान पर जाता है। यह पहला कुसंस्कार है। दो चार बार जाने से उसके मन के चिन्ह भी गहरे हो जाते हैं। पहले पहल शराब की दूकान पर जाने में जो झिझक थी वह अब जाती रही। इसके पश्चात् कई शराबी उसके मित्र हो जाते

हैं। शराबियों की मित्रता होते ही शराब से सम्बन्ध रखने वाले कई अन्य दुर्गुण भी चिपट बैठते हैं। इस प्रकार वह अवगुणों की एक बड़ी शृङ्खला में जकड़ जाता है जिससे छुटकारा पाना उसको कठिन होता है। जब वह पहले शराब की दुकान पर गया था उस समय उसका अपने मन पर आधिपत्य था। वह चाहता तो दूसरी बार ही शराब से परहेज कर सकता था। परन्तु अब कुसंस्कारों का उसके ऊपर राज्य है। वह कैदी के समान व्यापार कर रहा है। बलवती इच्छा होने पर भी उसके लिये यह सम्भव नहीं कि यह उनसे बच सकें। जितने दिन अधिक होते जाते हैं उतनी ही उसकी कठिनाइयाँ भी बढ़ती जाती हैं और वह सन्मार्ग से दूर होता जाता है।

दूसरा पुरुष है जो पहले पहल एक साधु महात्मा के दर्शन करने जाता है। महात्मा के उपदेश का पहले दिन उस पर नाम मात्र ही प्रभाव पड़ता है। परन्तु दो चार बार जाने से वह संस्कार परिपक्व होने लगते हैं और उत्तम गुणों का उसके मन में समावेश होने लगता है। जितना जितना अधिक वह महात्मा के पास जाता है उतना ही अधिक उसका सत्पुरुषों से परिचय होता है और अच्छी बातें उसमें आने लगती हैं, जिस प्रकार दुष्ट-पुरुष को कुछ दिनों के पश्चात् अपनी दुष्टता छोड़ना कठिन होता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष को दुष्टता करना कठिन होता है। जिस पुरुष ने कभी किसी को नहीं सताया और जो सर्वदा दूसरों की भलाई ही करता रहा है उसके लिये किसी को सताने का यत्न करना भी असम्भव सी बात हो जाती है। परन्तु डाकुओं को किसी की जान लेने में कुछ भी संकोच नहीं होता। यह सब संस्कारों की महिमा है। संस्कार बनाना मनुष्य के

हाथ में है। परन्तु जब संस्कार बनने लगे तो मनुष्य संस्कारों के हाथ में खिलौना मात्र हो जाता है। कुसंस्कार का बनाना ऐसा है जैसा किसी शत्रु के हाथ में अपने किले की कुञ्जी दे देना। जब एक बार कुञ्जी हाथ लग गई तो फिर शत्रु तुमको जैसा चाहेगा नचावेगा। अच्छे संस्कारों का आरम्भ करना ऐसा है जैसे बुद्धिमान और स्वामिभक्त मन्त्री का नियुक्त करना।

जब संस्कार ऐसी प्रबल चीज है तो आरम्भ से ही अच्छे संस्कार पैदा करने की कोशिश करनी चाहिये। वैदिक धर्माव-लम्बी प्राचीन तथा नवीन ऋषियों ने अच्छे संस्कार डालने की तीन विधियाँ बता दी हैं :--

(१) संगति
(२) पाँच महायज्ञ
(३) १६ नैमित्तिक संस्कार

संगति का मनुष्य के जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इस लिये जिन पुरुषों या अवस्थाओं में वह रहता है वह ऐसी होनी चाहिये जिससे उत्तम गुण और स्वभाव उत्पन्न हों। जिस प्रकार बच्चा अपने माँ बाप तथा घर और मुहल्लों वालों की भाषा तथा उच्चारण का अनुकरण करता है और आचरणों का अनु-करण उसके बुरे या भले संस्कारों की पुष्टि किया करता है। जिस प्रकार किसी अन्य भाषा का जानना बिना उस भाषा बोलने वालों में रहे हुये कठिन होता है। इसी प्रकार अच्छे आदमियों में रह कर कुचेष्टा करना या बुरों में रह कर अच्छे कर्म करना

भी दुस्तर होता है। कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं जिन पर संगति का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। शराबियों में रहते हुये वह शराब नहीं पीते, चोरों या व्यभिचारियों में रहते हुये चोरी या व्यभिचार से घृणा करते हैं अथवा अच्छे पुरुषों में रहते हुये भी बुरे हो जाते हैं। परन्तु ऐसों की संख्या एक हजार में एक से भी कम है। संसार में सभी चीजें तो कमल नहीं हैं। केवल कमल है जो पानी में रहते हुये भी नहीं भीगता। संगति में इतनी चीजें शामिल हैं :—

(१) माँ बाप तथा अन्य घर वाले।

(२) मुहल्ले वाले और विशेष कर मुहल्ले के बच्चे जिनके साथ बच्चे को खेलने का अवसर मिलता है।

(३) पाठशाला के अध्यापक और लड़के।

(४) किसी जाति या देश के वह पुरुष जो बड़े आदमी कहलाते हैं और जिनके आचरणों को देख कर बालक अपना उद्देश्य तथा आदर्श नियत करता है।

(५) पुस्तकें या समाचार पत्र जो अदृष्ट रूप से मनुष्य के जीवन को ढालते हैं।

(६) कहानियाँ और दन्त कथायें।

(७) चित्र तथा मूर्तियाँ।

(८) खेल तमाशे।

हर एक स्त्री या पुरुष का ऊपर लिखी हुई आठ बातों से अवश्य थोड़ा बहुत संसर्ग रहता है। यदि यह बुरे हैं तो मनुष्य बुरा हो जाता है। यदि भले हैं तो भला। यदि कुछ बुरे और कुछ भले हैं तो जिनका प्राबल्य होता है उन्हीं के अनुकूल मनुष्य का जीवन बनता है। इसलिये इन सबको अच्छा बनाने की जरूरत है।

दूसरे पाँच महायज्ञ हैं अर्थात् (१) ईश्वरोपासना या ब्रह्मयज्ञ (२) हवन या देवयज्ञ (३) बलि वैश्वदेवयज्ञ या भूतयज्ञ अर्थात् अन्य प्राणियों के लिये अपने भोजन में से कुछ भाग निकालना (४) पितृयज्ञ अर्थात माता पिता की सेवा सुश्रुषा करना (५) अतिथि यज्ञ अर्थात् साधू सन्यासी और महात्माओं का आदर करना। यह पाँचों महायज्ञ प्रति दिन किये जाते हैं। इनको महायज्ञ कहने का कारण यह है कि यह संगति के सम्बन्ध में ऊपर कही हुई आठ बातों पर प्रभाव डालते हैं। यदि उनमें से दुर्भाग्यवश कोई बात बुरी हुई तो इन महायज्ञों से उस बात के असर के मिटाने में सहायता मिलती है। जेसे कल्पना कीजिये कि किसी पाठशाला के अध्यापक दुष्ट हैं या देश के नेता स्वार्थी हैं। इनका प्रभाव व्यक्ति विशेष पर कम पड़ेगा अगर वह विधिपूर्वक पाँच महायज्ञ करता हो। संसार में फूल भी हैं और काँटे भी। कहीं फूल अधिक हैं कहीं कांटे अधिक। पाँच यज्ञ करने वाला मनुष्य काटों को त्यागकर फूलों को चुनने में अधिक समर्थ हो सकेगा।

तीसरे हैं नैमित्तिक १६ संस्कार। यह प्रतिदिन नहीं होते। किन्तु विशेष समयों पर मनुष्य को चेतावनी दिया करते हैं। मनुष्य के जीवन को एक सीधी सड़क नहीं है जिस पर वह

आंखें मूंद कर चल सके। यह कई स्थानों पर मुड़ती हुई चक्कर काटकर जाती है। प्रत्येक मोड़ पर सैकड़ों ऐसी सड़कें बनी हुई हैं जो अनिष्ट स्थानों को जाती हैं। वस्तुतः वह मार्ग नहीं हैं किन्तु मार्ग मालूम होते हैं। सच पूछिये तो वह उन लोगों के पैरों के चिन्ह हैं जो बहक कर सन्मार्ग से छूट गये हैं और जिन्होंने भटक भटक कर अपनी जान खो दी है। जब मनुष्य अपने जीवन के मोड़ पर आता है तो बहुधा धोखा खाकर उन्हीं झूठे मार्गों पर चल पड़ता है। इसलिये ऋषियों ने १६ संस्कार नियत किये हैं जो उसको ठीक मार्ग बताते रहें। इन संस्कारों के नाम ये हैं :—

(१) **गर्भाधान संस्कार**--जिसमें माता पिता सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करने से पूर्व सभ्य पुरुषों के सामने ईश्वर प्रार्थना और हवन करके वेद मंत्रों द्वारा यह प्रतिज्ञा करते हैं कि हम धार्मिक सन्तान उत्पन्न करना चाहते हैं और हम उन नियमों का पालन करेंगे जो सत् शास्त्रों में बताये गये हैं इस यज्ञ के पश्चात् वह गर्भाधान करते हैं।

(२) **पुंसवन संस्कार**- यह गर्भ रहने के ४थे महीने होता है।

(३) **सीमन्तोन्नयन संस्कार**--यह गर्भ रहने के सातवें महीने होता है। इनमें यज्ञ करके गर्भ की रक्षा के लिये ईश्वर से प्रार्थना की जाती हैं और माता पिता अपने इष्ट मित्रों को बताते हैं कि हमने यथोचित नियमों का पालन किया है और आगे भी करेंगे जिससे सन्तान अच्छी हो।

(४) जातकर्म संस्कार--यह बालक के जन्म के पश्चात् किया जाता है। लड़के या लड़की के कुशलपूर्वक उत्पन्न होने पर ईश्वर को धन्यवाद तथा इष्ट मित्रों के सन्मुख हर्ष प्रकट किया जाता है। बच्चे की जीभ पर सोने की शलाका से शहद और घी से ओ३म् लिखते है जिससे वह ईश्वर का उपासक बने और कान में 'वेदोऽसि' मंत्र पढ़ते हैं जिससे वह ज्ञानवान और धर्मात्मा हो सके।

(५) नामकरण संस्कार—जन्म के ११वें या १०१वें दिन या वर्ष के पीछे होता है। इसमें नाम रखकर लोगों को बताते हैं वह अब अमुक नाम से पुकारा जायगा। यहाँ उसके व्यक्तित्व का प्रादुर्भाव होता है।

(६) निष्क्रमण संस्कार—अर्थात् यज्ञ करने के पश्चात् बच्चे की शुद्ध वायु में फिराना आरम्भ करते हैं जिससे कोमलता कम होकर बच्चा हृष्ट पुष्ट होने लगे।

(७) अन्नप्राशन संस्कार- यह छठे मास होता है। जब बच्चे की पाचनशक्ति इतनी बढ़ जाती है कि वह माँ के दूध के अतिरिक्त कुछ कुछ खाना भी चाट सकता है। अब तक बच्चा माता की खुराक में से अपना हिस्सा बांटता था। माँ जो खाती थी उससे वह न केवल अपने शरीर का ही पालन करती थी अपने बच्चे का भी। लेकिन अब शनैः २ बच्चा शारीरिक स्वतंत्रता ग्रहण करना सीखता है। बच्चे के दाँत निकलने

से पता चलता है कि अब उसे भोजन का आवश्यकता होने लगी।

(८) मुण्डन या चूड़ा कर्मसंस्कार--यह साल भर पश्चात् या तीसरे वर्ष होता है। इसमें बच्चे के केश कटवाते हैं। यह उस समय होता है जब बच्चे की खोपड़ी कड़ी हो जाती है। इसके पश्चात् चोटी रक्खी जाती है जिसे शिखा कहते हैं और जो आर्यों का जाति-चिन्ह हैं। प्रत्येक शिखा-धारी का कर्तव्य होता है कि वह आर्य अर्थात् वैदिक सभ्यता की रक्षा करने में अपना तन मन धन लगावे। शिखा एक प्रकार की धर्म ध्वजा है जिस प्रकार सेना में झण्डे वाले (Flag-bearer) का उत्तरदातृत्व बड़ा होता है इसी प्रकार शिखाधारी का भी बड़ा उत्तरदातृत्व है। आजकल अवैदिक सभ्यता के फैलने के कारण लोग झट से चोटी कटा बैठते हैं। पुराने सिक्ख व गुरुओं ने चोटी की रक्षा में अपने प्राण तक अर्पण कर दिये थे।

(९) कर्ण-वेध संस्कार—यह तीसरे या पाँचवें वर्ष होता है। इसमें कान की लौ में छेद करके बाली पहनाते हैं।

(१०) उपनयन या यज्ञोपवीत संस्कार--इसमें तीन तार का जनेऊ दिया जाता है। यह पाँच वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक की अवस्था में होता है। तीन तारों का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य पर तीन प्रकार के ऋण हैं (१) पितृ-ऋण (२) ऋषि ऋण (३) देव ऋण। माँ बाप ने हमको उत्पन्न किया है अतः उनकी सेवा करने और अपने पीछे अच्छी सन्तान छोड़ जाने से यह ऋण चुकाया जा सकता

है। ऋषि मुनि प्राचीन वैदिक सभ्यता को हम तक पहुँचा गये। अब हमारा कर्तव्य है कि इसको पढ़ कर और उपदेश करके दूसरों तक पहुँचावें। यह ऋषि ऋण चुकाने की रीति है। हम नित्यप्रति अपने जीवन की रक्षा के लिये वायु को बिगाड़ा करते हैं। हवन यज्ञ द्वारा इसको शुद्ध करके देव ऋण चुकाना चाहिये। बालक यज्ञोपवीत धारण करके द्विज बनता है। द्विज उसको कहते हैं जिसने इन तीनों ऋणों को भली प्रकार समझ कर उनके चुकाने का बोझ अपने सिर पर लिया हो। जिसमें इतनी बुद्धि नहीं कि वह इनको समय पर चुका सके उसको शूद्र कहते हैं। क्योंकि वह पशुवत् दूसरों की आज्ञा पालन करने में समय लगाता है। अपने लिये स्वतंत्रतया कुछ नहीं सोच सकता। वह उस दिवालिये के :समान है जिस पर ऋण तो है परन्तु चुकाने के लिये कुछ साधन नहीं। जिस आर्य के कंधे पर जनेऊ नहीं वह दिवालिया है।

(११) वेदारम्भ संस्कार—यज्ञोपवीत धारण करके ऋण चुकाने की प्रतिज्ञा करके बालक गुरु से विद्या पढ़ना आरम्भ करता है। गुरु सब से पहले उसे गायत्री पढ़ाता है। जिसमें ईश्वर से बुद्धि बढ़ाने की प्रार्थना की गई है। बुद्धि के द्वारा ही मनुष्य अपने कल्याण की सोच सकता है और बुद्धि से ही उपर्युक्त तीनों ऋणों को चुका सकता है। गायत्री मन्त्र की बड़ी महिमा है। यह मनुष्य जीवन के लिये आदि और अन्त का उपदेश है। मनुष्य जहाँ रहे जिस अवस्था में रहे और कुछ करे उसे ईश्वर का ध्यान, भय तथा उस पर विश्वास अवश्य रखना चाहिये। इसीलिये वेदारम्भ संस्कार को गायत्री से, आरम्भ

करते हैं। चाहे मनुष्य कितना ही कम क्यों न पढ़ा हो उसे कम से कम गायत्री मन्त्र आरम्भ में अवश्य पढ़ लेना चाहिये और चाहे वह कितना ही अधिक क्यों न पढ़ा हो उसे गायत्री मन्त्र अवश्य याद रखना चाहिये।

(१२) समावर्त्तन संस्कार—समावर्त्तन का अर्थ है लौटना। यह उस समय होता है जब विद्याध्ययन समाप्त करके लड़का व लड़की घर वापस आते हैं।

(१३) विवाह संस्कार—जब स्त्री या पुरुष विद्या पढ़ के और शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति करके इस योग्य हो जाते हैं कि माता-पिता तथा गुरु के संरक्षण से अलग होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सकें और सन्तानोत्पत्ति कर सकें तो विवाह संस्कार होता है। इसकी अवस्थायें इस प्रकार हैं :—

कम से कम १६ वर्ष की स्त्री और २५ वर्ष का पुरुष
या १८ वर्ष की स्त्री और ३६ वर्ष का पुरुष
या २४ वर्ष की स्त्री और ४८ वर्ष का पुरुष

यह बाल ब्रह्मचारी और बाल ब्रह्मचारिणी होने चाहिये। बाल विवाह और वृद्ध विवाह दूषित हैं। इन दोनों से जाति को बड़ी हानि हुई। इसलिये इनका सदा परित्याग करना चाहिये। स्त्री पुरुष समान विचारों के होने चाहिये जिससे प्रेम पूर्वक जीवन व्यतीत हो। विवाह रुपये लेकर या लालच से करना अवैदिक है।

(१४) वानप्रस्थ संस्कार—अर्थात् पचास वर्ष का हो कर गृहस्थ आश्रम को त्याग कर वन में तपस्या करे। दूसरों को पढ़ावे और ईश्वर का अधिक भक्त बनावे।

(१५) संन्यास ग्रहण संस्कार—अर्थात् जब वन में रहते हुये के पूर्ण वैराग्य हो जाय और इतनी शक्ति हो जाय कि निस्वार्थ निष्काम कर्म कर सके तो संन्यास ग्रहण करे। और संसार को सुमार्ग पर लाने का यत्न करे। संन्यास गृहस्थआश्रम के सब सम्बन्ध छोड़ देता है।

अयं निजः परोवेति गणनालघुचेतसाम्।
उदारचरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम्।

अर्थात् संन्यासी का न कोई लड़का न स्त्री न भाई न बहिन। उसका तो समस्त संसार ही कुटुम्ब है। संन्यासी सांसारिक वस्तुओं से मोह छोड़ देता है इसलिये मरते समय उसे चिन्ता नहीं होती और वह अपने नित्य उपदेशों से संसार के आदमियों की त्रुटियाँ बताया करता है जिससे संसार बिगड़ने न पावे।

(१६) अन्त्येष्टि संस्कार—यह मृत्यु के पश्चात् शरीर को अग्नि में विधि पूर्वक जलाकर किया जाता है।

इस प्रकार सुसंगति, पांच यज्ञ और १६ संस्कारों द्वारा मनुष्य का विकास होता है। यह सब संस्कार स्त्री-पुरुष दोनों के समान होने चाहिये। बहुत से लोग समझते हैं कि लड़कियों का जनेऊ नहीं होता, कुछ लोग तो इसी कारण अपनी स्त्री के

बाँट का भी अपने गले में ही डाल लेते हैं। परन्तु यह भूल है। पति के ऊपर तीनों ऋणों का उतना ही भार है जितना स्त्री पर। स्त्री को भी पाँच महायज्ञ उसी प्रकार करने चाहिये जैसे पुरुष को। छः तार का जनेऊ नहीं पहनना चाहिये। जिस प्रकार स्त्री पुरुष का जोड़ा होता है इसी प्रकार एक जोड़े में दो जनेऊ होते हैं एक स्त्री के लिये दूसरा पुरुष के लिये। जब से लोग वैदिक सभ्यता भूल गए और स्त्रियों का अनादर करने लगे तभी से उनको वेद पढ़ने और जनेऊ पहनने से वर्ज दिया। यह बड़े अभाग्य की बात है। संस्कार लड़के और लड़की दोनों के होने चाहिये। आजकल कहीं-कहीं तो लड़कियों के यज्ञोपवीत की प्रथा चल पड़ी है।

१६ संस्कारों की विस्तृत विधि महर्षि दयानन्द कृत संस्कार विधि में और इनकी विस्तृत व्याख्या श्री मास्टर आत्माराम जी कृत संस्कारचन्द्रिका में दी हुई है। संस्कार के विषय में अधिक जानने की इच्छा करने वालों को इन दोनों पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिये। प्रत्येक संस्कार की विधि के तीन भाग होते हैं :—

(१) ईश्वर प्रार्थना और हवन जो प्रत्येक संस्कार के प्रायः एक ही हैं। इससे ईश्वर विश्वास और धर्म परायणता की वृद्धि होती है।

(२) विशेष प्रतिज्ञायें—वेद मंत्रों में विशेष संस्कारों के उद्देश्य तथा लाभ दिये हुये हैं।

(३) विशेष क्रियायें जो उस संस्कार से सम्बन्ध रखती

हैं। जैसे सिर के बाल काटना, बालक को खीर चटाना इत्यादि इत्यादि इन तीनों को विधि पूर्वक करना चाहिए।

बहुत से लोगों का विचार है कि इस प्रकार के संस्कार करने में धन अधिक व्यय होता है यह भूल हैं। संस्कारों की मुख्य विधि दरिद्र से दरिद्र पुरुष भी कर सकता है। रहा इष्ट मित्रों का सत्कार तथा दान आदि। यह प्रत्येक पुरुष को अपनी आय के अनुसार करना चाहिये। इससे कम व्यय करना कंजूसी है और अधिक व्यय करना महा मूर्खता है। धन का व्यय करना संस्कार का मुख्य अंग नहीं है। जिसके पास धन नहीं है उसे बच्चों के संस्कार टालने नहीं चाहिये। चार पैसे घी और सामग्री से संस्कार कर देना अच्छा है न कि लोक लज्जा से संस्कारों को टाल देना। बहुत से लोग संस्कार के मुख्य अंग पर तो कम व्यय करते हैं और दिखावे में बहुत कर देते हैं— यह भूल है जैसे जनेऊ पर सैकड़ों रुपये व्यय कर देना और बालक के पढ़ाने के लिये कुछ भी व्यय न करना। यह उसी प्रकार की मूर्खता है जैसे कोई चमकीले वस्त्र धारण करे परन्तु भूखा मरे। मुख्य को मुख्य और गौण को गौण समझना विद्वानों का काम है।

संस्कारों की प्रथा आजकल भी हिन्दुओं में प्रचलित है पर इनकी विधि कुछ दूषित हो गई है। अतः इसमें सुधार करना परमावश्यक है। कुछ आवश्यक संस्कार तो बिलकुल बन्द ही हो गये हैं। मुंडन संस्कार के लिये देवी और देवताओं की खोज होती है। कहीं कहीं तो मियाँ मदारों की शरण ली जाती है। इसी तरह विवाह के समय ही यज्ञोपवीत देने की प्रथा

भी बड़ी बुरी चल पड़ी है। इस प्रकार गृहस्थाश्रम और ब्रह्मचर्य आश्रम का प्रवेश साथ साथ होने लगा है। कर्णवेध संस्कार भी इसी प्रकार बुरी विधि से किया जाता है।

संन्यास संस्कार तो बिल्कुल ही बिगड़ गये हैं। इसी का यह फल है कि आज भारतवर्ष में लाखों गेरुआ वस्त्र रंगे आलसी मूर्ख व्यभिचारी व्यक्ति देश का धन व्यर्थ कर रहे हैं और हिन्दू लोग इनको अपना पूज्य समझते हैं। यदि संस्कारों की प्रथा सुधर जाय तो फिर भारत में सुख और आनन्द छा सकता हैं।

दयानन्दर्षि वाणी

शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं इसलिये संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।

(संस्कार विधि)

संस्कार-महिमा

शुभ संस्कार की महिमा कही न जावे,
बिन संस्कार के जीवन व्यर्थ गँवावे।

प्रत्यक्ष जगत में देखो नयन उघारी,
है संस्कृत संस्कार से सृष्टि सारी॥

जो वस्तु किंचिन्मात्र भी तुमको प्यारी,
कर्ता ने उसके संस्कार किये भारी।

वह गूढ़ रहस्य जाने जो बुद्धि लड़ावे ॥बिन० ॥१॥

जो अन्न और मिष्ठान्न आप खाते हैं,
बिन संस्कार वह कैसे बन जाते हैं?

प्रथम तो शुद्ध पृथिवी को करवाते हैं।
फिर करें सकल संस्कार पदार्थ पाते हैं,
घृत मिले तभी जब पहले दही जमावे ॥बिन० ॥२॥

बहुधा करते प्रयोग उपवन में माली,
खट्टे में मिष्ट की लगा देत हैं डाली।

यह क्रिया सभी है मित्रों! देखी भाली,
पर शोक आपने बात हँसी में टाली।
जल होय प्राप्त जब प्रथम कूप बन जावे॥बिन०॥३॥

बस इसी भाँति सन्तानों को भी लीजे।
सत संस्कार जब बुद्धि पूर्वक कीजे,

हों बच्चे संस्कृत शुभ्र तभी चित दीजे,
कहें 'चन्द्र' कवी फिर घोल अभी रस पीजे,
तज संस्कार-पथ भारत कष्ट उठावे ॥बिन० ॥४॥

मुद्रक : चन्द्रा प्रिंटिंग वर्क्स, प्रयाग।

ओ३म्

खण्डन-मण्डन ग्रन्थमाला–पुष्प सं० ६६

यज्ञोपवीत

का

(धार्मिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व)

लेखक—

(खण्डन मण्डन ग्रन्थमाला के समस्त ग्रन्थों के लेखक)

आचार्य डा० श्रीराम आर्य

कासगंज (एटा) उ०प्र०

प्रकाशक—

वैदिक साहित्य प्रकाशन

कासगंज (उ० प्र०) भारतवर्ष

दयानन्दाब्द १५५

द्वितीयवार-११००] आर्य संवत् १९७२९४९०८० [मूल्य ६० पै०

सन् १९८० ई०

यज्ञोपवीत
का
धार्मिक एवं वैज्ञानिक महत्व

द्विज वर्ग द्वारा यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल अर्थात सृष्टि के आदि से आर्य जाति में चली आ रही है। वैदिक धर्म में यह एक अति महत्व पूर्ण संस्कार है जो उपनयन संस्कार के नाम से प्रचलित है। महर्षिदयानन्द सरस्वती जी महाराज ने संस्कार विधि ग्रन्थ में इस संस्कार की पूर्ण विधि दी है।

'यज्ञोपवीत' शब्द का अर्थ है यज्ञ का उपवीत-जनेऊ अर्थात यज्ञ के निकट बैठने का, यज्ञ करने की योग्यता वा अधिकार का चिन्ह। यज्ञोपवीत कुलीन धार्मिक-सदाचारी-विद्वान व्यक्तियों के धारण करने की वस्तु है। मूर्ख-अकुलीन-दूषित खान पान वाले दुराचारी अधार्मिक, मलीन परिवारों व व्यक्तियों के धारण करने की वस्तु नहीं है। अतः यज्ञोपवीत संस्कार सभी का नहीं होना चाहिए। उसके लिये पात्र कुपात्र का विचार रखना चाहिये और यह भी देख लेना चाहिये कि क्या वह व्यक्ति जिसको यज्ञोपवीत देना है वह उसकी मर्यादाओं का पालन भी कर सकेगा अथवा नहीं, उसकी यज्ञोपवीत में धार्मिक श्रद्धा भी है अथवा नहीं। इसलिए जो भ्रान्त राजनैतिक व्यक्ति यह नारा लगाते हैं कि सभी को जनेऊ दे दिया जावे वा सभी को उस का अधिकार है, वे जनता के गुमराह करने वाले हैं, वे इस महत्व पूर्ण धार्मिक संस्कार का मखौल उड़ाने वाले व इसकी पवित्रता को नष्ट करने वाले हैं।

आश्वालयन गृह सूत्र व मानव धर्म शास्त्र मनुस्मृति में इसके लिए जो व्यवस्था है उसे उद्धृत करते हुये ऋषि दयानन्द

निश्चित कर दिए हैं और आदेश दिया है कि जो भी व्यक्ति स्ववर्ण के कर्तव्य पालन से च्युत हो जावे उसे तदनुरूप वर्ण में सम्मिलित कर दिया जावे तथा यदि कोई व्यक्ति स्ववर्ण के निश्चित कर्तव्य गुण कर्म स्वभाव से ऊँचा उठकर अपने से उच्च वर्ण के गुण कर्म स्वभाव को धारण करने वाला बन जावे तो उसे उसके अनूकूल वर्ण में गिना जावे।

यह भी प्रत्यक्ष है कि प्रत्येक बालक में अधिकतर अपने वंश वा माता पिता के गुण कर्म स्वभाव के संस्कार जन्म से आते हैं। ब्राह्मण बालक में धर्म कर्म व प्रभु भक्ति के प्रतिरुचि, संस्कृत एवं शास्त्रों के अध्ययन की ओर झुकाव, क्षत्रिय बालक में शूर वीरता वैश्य बालक में अर्थ एवं व्यापार के प्रति आकर्षण स्वभावत: होता है। शूद्र की परिभाषा ही यह है कि जिसे पढ़ने पढ़ाने से भी विद्या न आवे मन्द वुद्धि–अकुलीन-भक्ष्याभक्ष्य मद्य मांस सेवी कुसंगतिप्रिय–कटुभाषी दुर्व्यसनी–महामलीन रहने वाले व्यक्ति शूद्र वर्ण में आते हैं। उनकी सन्तान भी माता पिता जैसे संस्कारों वाली दूषित रक्त व अशुभ संस्कारों वाली होती है ऐसे व्यक्तियों के यज्ञोपवीत संस्कार की व्यवस्था नहीं है। वे केवल सेवा परायण ही हो सकते हैं।

यज्ञोपवीत को धारण करने बाले बालक एवं शुद्ध मंत्रो–च्चारण करने में समर्थ व्यक्तियों को ही यज्ञ करने का अधिकार शास्त्रों ने दिया है। अशुद्ध मंत्र बोलने से वेद मंत्रों के अर्थ ही बदल जाते हैं और यज्ञ करने वालों को हानि होती है। विधि हीन–मंत्र हीन एवं श्रद्धाहीन यज्ञ यज्ञकर्त्ता का विनाश करता है। जो व्यक्ति देश काल–ॠतु–रोग एवं वायु मण्डल को देखकर ऐसी यज्ञ सामिग्री से हवन करते हैं जो उनके यज्ञ करने के

उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होने के अनुकूल नहीं होती हैं, उनको यज्ञों से भारी हानि उठानी पड़ती है, अतः यज्ञ में सामिग्री का निर्माण बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए और यह कार्य आयुर्वेद एवं यज्ञ विज्ञान के विशेष ज्ञाता के परामर्श से होना चाहिए। अशुद्ध मन वचन कर्म वाला, मलिन वस्त्रों वाला, आचरण हीन, अभक्ष्य भोजी व्यक्ति को यज्ञ पर बैठने का अधिकार नहीं हैं, अतः ऐसे व्यक्ति को यज्ञोपवीत धारण करने का भी अधिकार नहीं है। इसीलिए वैदिक धर्म में यज्ञोपवीत का अधिकार केवल शुद्ध द्विजों को ही दिया गया है।

जनेऊ धारण करने का भी प्रयोजन होता है, केवल डोरा गले में डाल लेना और चाबी का गुच्छा उसमें बांधे फिरना इस पवित्र संस्कार का महत्व कम करना है। जनेऊ में ३/३ तारों से बने तीन तार होते हैं जिन से तात्पर्य जनेऊ धारण कर्त्ता को यह स्मरण करना होता है कि उसे जीवन में तीन ऋणों से उऋण होने का उत्तरदायित्व उठाना है। ऋषि ऋण, देव ऋण तथा पितृ ऋण यह तीन ऋण प्रत्येक जनेऊ धारण कर्त्ता को यथा शक्ति उतारने में आजीवन सचेष्ठ रहना होता है जनेऊ देते समय आचार्य उसे इस बात का उपदेश देता है और उसे धारण करने वाला इसकी पूर्ति का वचन देता है। शूद्र अर्थात् मूर्ख व्यक्ति न तो इसका महत्व समझ सकता है और न इसकी पूर्ति ही कर सकता है अतः उसे यज्ञोपवीत धारण करने से वंचित किया गया है।

जनेऊ पहिनने का विधान केवल ब्रह्मचर्य ग्रहस्थ तथा वानप्रस्थ तीन ही आश्रमों के लिये है। सन्यासी को नहीं है। जनेऊ के तीन तार तीनों आश्रमों के कर्त्तव्य पालन करने की ओर

धारणकर्त्ता का ध्यान निरन्तर आकर्षित करते रहते है। कोई अधार्मिक गलत कार्य यज्ञोपवीत धारी से न होने पावे इस विषय में उसे सदैव सचेत रहना पड़ता है।

यज्ञोपवीत की लम्बाई ९६ अंगुल की होती है। इसका अर्थ है कि जनेऊ धारण करने वाले को ६४ कलायें और ३२ विद्याओं को सीखने का प्रयत्न करना है जितना भी हो सके प्रयत्नशील रहना है। मनुष्य का शरीर अपने हाथ से ९६ अंगुल लम्बा होता है। यज्ञोपवीत उसे स्मरण दिलाता है कि उसे धारण करने वाले पर यह उत्तरदायित्व आता है कि वह सदैव अपने सम्पूर्ण शरीर को स्वस्थ व पवित्र बनाये रखने का ध्यान रखे। उसकी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियां स्वस्थ रहें। मन वचन कर्म–हृदय व मस्तिष्क सभी स्वस्थ रहें उसके किसी भी भाग में दुर्व्यसन प्रवेश न करने पावे जिससे वह संसार में पूर्ण यशस्वी जीवन व्यतीत करने में समर्थ हो सके। यज्ञोपवीत के तीन तार कर्तव्य बोध के चिन्ह हैं।

यज्ञोपवीत में तीन गाँठें लगती है जिनका भाव यह है कि उसे धारण करने वाले को ज्ञान कर्म उपासना तीनों को एक साथ प्राप्त वा अभ्यास करना चाहिये।

६४ कलायें और ३२ विद्यायें जिनको यज्ञोपवीत धारी को जानना है वे इस प्रकार हैं—

(१) गान विद्या (२) वाद्य विद्या भांति २ के बाजे बजाना (३) नृत्य (४) नाट्य (५) चित्रण (६) वेलबूटे बनाना (७) चावल व फूलों से स्थान का सजाना (८) फूलों की सेज बनाना (९) मणियों का फर्श बनाना (१०) शय्या रचाना (११) जल को बाँध देना (१२) विचित्र सिद्धियाँ दिखाना (१३) हारमाला

बनाना (१४) कान और चोटी के फूलों के गहने बनाना (१५) कपड़े और गहने बनाना (१६) फूलों के आभूषण से श्रृंगार करना (१७) कानों के पत्तों की रचना करना (१८) इत्र तेल आदि की सुगन्धित वस्तुऐ बनाना (१९) इन्द्रजाल जादूगरी (२०) चाहे जैसा वेष धारण कर लेना (२१) हाथ की फुर्ती से काम (२२) तरह तरह की खाने की वस्तुऐ बनाना (२३) तरह तरह के पीने के पदार्थ बनाना (२४) सुई के काम (२५) कठपुतली बनाना व नचाना (२६) पहेली (२७) प्रतिमा आदि बनाना (२८) कूटनीति (२९) ग्रन्थों को पढ़ने की चातुरी (३०) नाटक आख्यायिका आदि की रचना करना (३१) समस्या पूर्ति करना (३२) पट्टी वेत वाण आदि बनाने की चातुरी (३३) गलीचे दरी आदि बनाना (३४) बढ़ई की दस्तकारी (३५) घर आदि बनाना (३६)सोना चांदी आदि धातु रत्नों की परीक्षा करना (३७) सोना चांदी आदि बना लेना (३८) मणियों की परीक्षा करना रंगो की जांच करना (३९) मुर्गा बटेर आदि लड़ाना (४०) बृक्षों की चिकित्सा (४१) खाने की पहिचान (४२) पक्षियों तोता मैंना आदि की बोलियां बोलना (४३) उच्चाटन विधि (४४) केशों की सफाई का कार्य (४५) मुठ्ठीं की चीज व मन की बात बता देना (४६) म्लेक्ष काव्यों को समझ लेना(४७) विभिन्न देशों की भाषा का ज्ञान (४८) शकुन विचार (४९) नाना प्रकार के मृतका यन्त्र बनाना (५०) रत्नों को नाना प्रकार के आकारों में काटना (५१) सांकेतिक भाषा जानना (५२) मन से नई नई बातों का निकालना (५३) जल से काम करना (५४) समस्त कोषों का ज्ञान (५५) समस्त छन्दों का ज्ञान, (५६) दयूत विद्या (५७) दूर से मनुष्य या वस्तुओं का आकर्षण करना (५८) मन्त्र विद्या(५९) बालकों के

खेल (६०) विजय प्राप्त कराने की विद्या (६१) वस्त्रों को बदलने की विद्या (६२) स्मरण शक्ति को बढ़ाना (६३) खानों की विद्या (६४) अवस्था परिवर्तन।

बत्तीस विद्यायें—चार वेद। चार उपवेद। छः अंग। छः दर्शन। तीन सूत्र ग्रन्थ। नौ आरण्यक। कुल बत्तीस विद्यायें हैं। इन में से जितना भी कुछ सीख सकता है यज्ञोपवीत धारी को सीखने का यत्न करना चाहिए।

शौच एवं लघुशंका के समय जनेऊ को कान पर चढ़ाने का भी विधान है। इसका साधारण अर्थ तो यह है कि उसे यह स्मरण रहता है कि उसके साथ तब तक अशुद्ध हैं जब तक कि जनेऊ ऊपर चढ़ा है उसे हाथों को स्वच्छ बनाना है। दूसरे यज्ञोपवीत जैसे पवित्र धागे को नाभि से नीचे के अंगों के स्पर्श से बचाना है। इसके अतिरिक्त इस क्रिया में वैज्ञानिक रहस्य भी हैं। दिल्ली के दैनिक हिन्दुस्तान तारीख ३०—१०—७७ में इंगलैन्ड के लन्दन के क्वीन ऐलिजावेथ चिल्ड्रन हास्पीटल के एक भारतीय डाक्टर एस० आर० सक्सैना महोदय ने दिल्ली के एक चिकित्सकों के विश्व सम्मेलन में तारीख २६–१०–७७ को दिए वक्तव्य में छपा है कि उन्होंने कहा कि मलमूत्र त्याग करते समय ब्राह्मण लोग जनेऊ को कान पर लपेटते हैं। इसका वैज्ञानिक आधार हैं क्योंकि इससे कान के पास की एक नस में विशेष हरकत होने लगती है। इस नस की हरकत से आंतों की क्रिया में सहायता मिलती है तथा हृदय पर भी उसका अच्छा असर पड़ता है। डा० सक्सैना ने कहा कि मैंने १६ बच्चों के कान को आहिस्ता से दबाने का परीक्षण किया और पाया कि इससे उनके रक्त चाप तथा श्वांस प्रक्रिया में अच्छा असर पड़ा।"

इससे प्रकट है कि स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से जनेऊ धारण करना उपयोगी है। इसके अतिरिक्त यज्ञोपवीत को उस समय कान पर चढ़ाना व थोड़ा कसना उपयोगी रहता है जब आंतों पर नीचे की ओर जब दबाव पड़ता है। इससे आंत उतरने का रोग कभी भी नहीं हो सकता हैं। जो लोग यज्ञोपवीत नहीं पहिनते हैं और पतलून पहिनते हैं उनको आंत उतरने की शिकायत ज्यादातर होती हैं। धोती या लंगोट पहिन कर नाभि के नीचे का भाग कस जाने पर भी आंत उतरने का रोग नहीं हो पाता है। जनेऊ को दाहिने कान पर लपेटना चाहिये। यह विधि धार्मिक होने के साथ स्वास्थ्य विज्ञान के आधार पर भी उपयोगी है।

जो लोग शारीरिक परिश्रम अधिक करते हैं उनके शरीर के वाह्य एवं आन्तरिक अंग पुष्ट हो जाते हैं। भारी काम करने पर भी उनको कोई विशेष कष्ट नहीं होता है जबकि द्विज वर्ण के लोग मस्तिष्क से अधिक काम लेते हैं। उनको बैठने का ही विशेष काम पड़ता है अतः उनके शारीरिक अंग अधिक पुष्ट नहीं होने पाते हैं आँतों पर दबाव पड़ने की अवस्था में उनको आंत उतरने की सम्भावना विशेष रहती हैं अतः उनके लिये जनेऊ धारण करना परमावश्यक बताया गया है। हाँनियां वा आंत उतरने के अवसर उन्हीं लोगों में अधिक देखने में आते हैं।

यज्ञोपवीत एक महत्व पूर्ण संस्कार है अतः उसे धारण करने की एक विशेष पद्धति है। धारण करते समय अथवा बदलते समय निम्न मंत्रों के बोला जाता है—

पहिनने का मंत्र—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापते र्यत्सहजं पुरस्तात्।

आयुष्य मग्रयं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः । यज्ञोपवीत मसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतं नो पहनयामि ।। पार १।२।११ यह मंत्र यजुर्वेद के अ० १६ मंत्र १७ के अनुकूल है ।

—जनेऊ उतारने का मंत्र—

ओम् यज्ञोपवीतं यदि जीर्णवन्तं वेदान्त वेछोर्पार ब्रह्म सूत्रम् ।
आयुष्य मग्रयं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपबीत् बिश्रजामि चैतत् ।।

यज्ञोपवीत संस्कार वेदादि शास्त्रों से सम्मत हैं । इस विषय से कुछ प्रणाम निम्न प्रकार हैं—

१—पुरा कल्पेषु नारीणां मौजी बन्धन मिष्यते ।

अध्यापनं च वेदानां सावित्री वाचनं तथा ।। यम संहिता ।

२—नमो नमो हरि केशायों पवीतिने पुष्टानां पतये नमो नमः ।।
यजुर्वेद १६।१७

३–युवा युवासा परिवीत आगात्स उश्रेयान् भवत्ति जायमानः ।
तंघीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ।।

ऋ०३।१।८।४।

४—यज्ञाख्यः परमात्मा य उच्चते यैहोत्र भिः ।
उपवीतं यतोऽस्तीदंतस्माद् यज्ञोप वीत कम्।। पारिजात स्मृति ।।

५—उपवीत गुरुशिष्यं शिक्षयेत् शौचमादितः
आचार मग्नि कार्यं च संन्ध्योपासन मेव च ।। मनु

६—ततः शुक्लाम्वरधरः शुक्ल यज्ञोपवीत वान ।
शुक्ल केश सितश्मश्रु शुक्लमाल्यानुलेपनम् ।। महाभारत

७—यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्य मग्रयं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बल मस्तु तेजः ।।
पार० २।२।११

८—देवा एतस्याम वदन्त पूर्वे सप्त ऋषय स्तपसं निषेदुः ।
भीमाजाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धादधाति परमे व्योमन् ।।
ऋ०१०।८।१०८।४

९—उपवीतिने पुष्टानां पतये नमः । यजुः १६।१७।
अर्थ—यज्ञोपवीत धारण कराने वाले बलवानों के स्वामी का आदर करो ।

१०—त्रिरस्यता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमा न्यग्नेः।।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिःशुक्रो अर्यो रोरुचानः ।।
ऋ० ४।१।१७।

११—प्रजापति वै भूतान्मुपासीदन । प्रजावैभूतानि विनोधेहि यथा जीव मेति ततो देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणां जान्वा न्योपासी दस्तान ब्रवीद् ।

१२—यज्ञो वोन्नम् मनृतत्वं व ऊर्ज्जं सूर्य्यो वैज्योतिरिति ।।
शत पथ २।४।३१

१३—प्राणानां ग्रन्थिरसि मा विस्रसोऽन्तक इदं ते परि ददाम्यमुम्।।
मं० ब्रा० १।६।२०।

१४—'प्रावृतां यज्ञोपवीतिनी मभ्युदान यश्जयेत्' सोमोऽददद्गन्ध
वर्यिति ॥ गो० गृ० सू० २।१।१९।२१।

अर्थ—जो कन्या यज्ञोपवीत धारण की हुई वस्त्रादि से आच्छादित हो उसे विवाह मण्डप में लावे और सोमोऽददद् गन्धर्वायेति' इस वेद मंत्र को पढ़े ।

१५—द्विविधा स्त्रियों ब्रह्मवादिन्यः सधोवध्वश्च तत्र ब्रह्मवादिनीनां उपनयनं अग्नि बन्धनं वेदाध्ययनं स्व गृहे भिक्षा इति, वधूनांतु पस्यिते विवाहे कथञ्चिदुप नयनं कृत्वाविवाह कार्यं ।।(मध्वाचार्य)

अर्थ—स्त्रियां दो प्रकार की होती है ब्रह्मवादिनी और सदयः वधू । ब्रह्मवादिनियों को उपनयन, अग्नि बन्धक (यज्ञ हवन) वेदाध्ययन और अपने घरों में ही भिक्षा करनी चाहिए । सदयो-वधुओं को अवश्य ही विवाह के समय नाममात्र का उपनयन (यज्ञोपवीत) करना चाहिये ।

१६-ससूर्यस्य रश्मिभिः परिव्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिबृत्तं यथा बिदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिपो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥
ऋ०॥९।८६।३२

अर्थ—इस मंत्र में ब्रह्मचारी का वर्णन है जो गुरुकुल से निकल कर संसार में विद्या का प्रचार करता है (सः) वह ब्रह्म-चारी यथाविदे ज्ञान पूर्वक (त्रिवृत्तं तन्तु तन्वानः) तीन धागों का जनेऊ धारण करता हुआ (सूर्यस्य रश्मिभिः पारिव्यत्) सूर्य किरणों के समान प्रकाश से प्रकाशित होता है (ऋतस्य प्रशिक्षः नवीयसीः नयन) ईश्वर के सृष्टि नियम की प्रशंसायुक्त नई

बातें फैलता हुआ (जनीनालान पतिः) मनुष्यों का नेता (निष्कृतं उपयाति) स्वतन्त्र विचरता है। इसके तीन धागे के जनेऊ धारण करने का विधान है।

१७–यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः। तमा हुतं नशीमहि ॥
ऋ१०।५७।२।

अर्थ–(यः) जो (यज्ञस्य प्रसाधनः) यज्ञ को पूरा करने वाला (तन्तुः देवेषु आततः) सूत्र विद्वानों में फैलाना प्रचारित है (तम आहुतं) उस पूज्य सूत्र (जनेऊ) को (नशीमहि हम भी धारण करें व प्राप्त होवें।

इसमें बताया गया है कि इस सूत्र को विद्वान पहिनते हैं। यह मूर्खों (शूद्रों) को पहिनने की वस्तु नहीं हैं।
१८—तस्मात् प्राचीनोंपवीतस्तिष्ठे प्रजायतेनु मा बुध्येस्वेति अन्वेन प्रजाऽनु प्रजापतिर्बुध्यते य एव वेद ॥

अर्थ–(तस्मात् प्राचीनोपवीतः) इसलिये सामने जनेऊ धारण करके(तिष्ठे) खड़ा हो और प्रार्थना कर कि(प्रजापते मा अनुबु-ध्यस्वः) हे ईश्वर मुझ पर कृपा कीजिये। (एव) ऐसे पुरुष पर (प्रजा)लोग और (प्रजापतिः अनुबुध्यते) ईश्वर कृपा करते हैं।
१६—एतावद रूपं यज्ञस्य यद् देवैब्रह्मणा कृतम्।

तदे तव सर्व माप्नोतिः वज्ञे सौत्रामणी सते ॥ यजु १६।३१।

अर्थ-[यज्ञस्य एतावद् रूप] यज्ञ का इतना रूप[यह ब्राह्मण] जितना ईश्वर ने [देवैः कृते] विद्वानों द्वारा सम्पादित कराया है। तत् एतत् सर्वं वह सब [सौत्रामणि सते यज्ञे] जनेऊ धारण करने के निमित्त यज्ञ में [आप्नोति] प्राप्त होता है।

'सौत्रामणि' अर्थात् सूत्राणि यज्ञोपवीतादीनि मणिना ग्रन्थिना मुक्तानि ध्रियन्ते यस्मिन्स्तस्मिन ।। [दयानन्द भाष्य] अर्थात् वह यज्ञ जिससे जनेऊ आदि धागे की गांठ वनाकर पहिना जाता है। इसी सौत्रामणि यज्ञ के द्वारा यज्ञोपवीत धारण करके मनुष्य द्विज बनता है अतः सौत्रामणि यज्ञयज्ञोपवीत संस्कार हैं।

२०–व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवति अशून्यो भवति अविच्छिन्नोऽस्य तन्तुः अविच्छिन्नं जीवनं भवति ।। गोपथ, पूर्व भाग प्र० १ के २५

अर्थ—बृत से ब्राह्मण ज्ञानी हो जाता है। भरपूर हो जाता हैं, आवण्डित हो जाता है, उसका जनेऊ खण्डित नहीं होता है।

२१—'उपनयेतैनम्' गो० पूर्व २।४।।

आचार्य को चाहिये कि ब्रह्मचारी का उपनयन करे।

२२—उपनीयतु यः शिष्यं वेदम ध्यापयेद्द्विजः।
संकल्प स रहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ।। [मनु २।१४०]

अर्थ—जो ब्राह्मण शिष्य का उपनयन करके वेद को कल्प और रहस्य के साथ पढ़ाता है। वही आचार्य कहाता है।

२३—उपनयनं विद्यार्थस्य श्रुतितः संस्कारः। आपस्तम्ब प्र०१

अर्थ– विद्या के इच्छुक का वैदिक संस्कार उपनयन है यह वेद समर्थित है।

२४—दक्षिणं वाहुमद ध्रत्य शिरोऽवधाय सव्येऽ से प्रतिष्ठापयति दक्षिणं कक्ष मन्वलम्बय भवत्येवं यज्ञोपवीती भवति।"

गो० गृ० प्रथ० १।२।२।

अर्थ—दाहिनी भुजा को उठा के शिर के उपर से बाये कन्धे पर दाहिनी बगल में होकर जनेऊ डाला जाता है।

२५–तत्र ब्रह्मबादिनीनामुप नयने वेदाध्ययनं स्व गृहे भिक्षा चर्या इति ।। हारीत स्मृति २१।१३।।

अर्थ—ब्रह्मवादिनी स्त्रियों के लिये उपनयन, वेदाध्ययन और अपने घर में ही भिक्षाचर्या विहित है।

२५—कामः गृहयाग्नौ पत्नी जुहुयात् सायं प्रातर्होत्रयौ गृहा पत्न गृहयएषोऽग्नि भर्वति ॥ गो० गृ० १।३।१५

अर्थ—इच्छा करने पर पत्नी घर में प्रातः सायं हवन करे।

नोट—यज्ञोपवीतधारी ही यज्ञ कर सकता है। अतः पत्नी का यज्ञोपवीत होना स्पष्ट हैं।

२७—स्त्रिया उपनीता अनुपनीतांश्च" पारस्कर गृहयासूत्र।

अर्थ—स्त्रियों के यज्ञोपवीत भी हैं और नहीं भी होते हैं।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि वेद व अन्य शास्त्रों द्वारा यज्ञोपवीत धारण करने का आदेश है। यज्ञोपवीत होने के बाद ही बालक का दूसरा जन्म माना जाता है अतः वह द्विज[द्वारा जन्म] बनता है। यज्ञोपवीत पुरुष व स्त्री दोनों के लिये विहित है, यह भी ऊपर के अनेक प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है। उसे बांये कन्धे पर ही पहिनना व दायी बांह के नीचे होकर धारण किया जाता है इसका भी प्रमाण ऊपर आ चुका है।

—दाहिने कान पर जनेऊ चढ़ाने की आज्ञा—

मूत्रेत् दक्षिणे कर्णे पुरीष वाम कर्णके।
उपवातं सदा धार्यं मैथुनेतुपवीतिवत् ॥ [आन्हिकधारिका]

मूत्रोत्सर्ग के समय दाहिने कान पर, शौच के समय बांये कान पर सदा रखे। तथा मैथुन के समय जैसे पहिनता है वैसे ही पहिने रहे।

नोट—दाहिने कान पर पहिनने का लाभ पीछे दिया है. वांये पर लपेटने का भी परीक्षण किया जाना चाहिये कि उससे क्या लाभ होते हैं।

दिवा संध्या सुकर्णस्थ ब्रह्मसूत्र उदङ. मुखः।
कुर्यान्मूत्र पुरीषे च रात्रौ चेदक्षिणामुखः ॥ याज्ञवल्क्य

स्मृति आचाराध्याय-ब्रह्मचारी प्रकरण श्लोक १६ ॥

अर्थ--दिन में और सन्ध्या के समय दाहिने कान में यज्ञोपवीत लगाके उत्तर को ओर मुख करके लघुशंका और मल त्याग मौन रहता हुआ करे और इसीप्रकार रात्रि हो तो दक्षिण दिशा में मुंह करके मल मूत्र त्याग करे।

--शूद्रों को भी जनेऊ का विधान--

कुश सूत्र द्विजातीनां स्यादाज्ञां कौशेय पदद्कम ॥७॥
वैश्यानां चीरणं क्षौमं शूद्राणां च वल्कजम् ॥७॥
कार्पासिं पदमजं चैव सर्वेशां शस्तमीश्वरः ॥८॥
ब्राह्मण्यां कर्तितं सूत्रं त्रिगुणं त्रिगुणीकृतम् ॥६॥

॥गरुण पुराण अ० ४३ ॥

अर्थात्--कुश का जनेऊ ब्राह्मण को, क्षत्रिय को रेशम का, वैश्यों के सूत का और शूद्र को सन का होना चाहिये। अथवा सभी को सूत बना तीन-तीन तारों को तिगुना करके बनाया और ब्राह्मणी के हाथ का कता होना चाहिये।

शूद्र भी दो प्रकार के माने गये हैं, स्वच्छ शूद्र तथा अस्वच्छ शूद्र। यहां तात्पर्य स्वच्छ शूद्र से है।

—बिना चोटी जनेऊ के यज्ञ का अधिकार नहीं—

सदोपवीतिना भाव्यं सदाबद्ध शिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥कात्यायन स्मृति १४

अर्थ--सदा जनेऊ पहिने और शिखा में गांठ सदैव लगाये रखे जिसके शिखा में गांठ और जनेऊ नहीं है वह जो काम करता है वह न किये के समान है ॥ अतः द्विजों को जनेऊ धारण करना चाहिये।

दशबन्धु प्रिंटिंग प्रेस, हाथरस। फोन : ५१७

खण्डन मण्डन ग्रन्थमाला के ग्रन्थों की सूची :—

कुरान की छानबीन
भागवत समीक्षा
गीता विवेचन
बाइबिल दर्पण
कुरान पर १७६ प्रश्न
कुरान दर्पण
ईश्वर सिद्धि
वैदिक यज्ञ विज्ञान
जैन मत समीक्षा
मुनि समाज मुख मर्दन
अवतार रहस्य
मूर्ति पूजा खण्डन
टोंक का शास्त्रार्थ
माता पुत्री का सम्वाद
भारतीय शिष्टाचार
शिवलिंग पूजा क्यों ?
अद्वैतवाद मीमाँसा
प्रार्थना भजन भाष्कर
यजुवद अ० ४० सव्याख्या
यजुर्वेद अ० ३१ सव्याख्या
वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है
पुराण किसने बनाये ?
माधवाचार्य को डबल उत्तर
पौराणिक गप्प दीपिका
इस्लाम दर्शन
कबीर मत गर्व मर्दन
ब्रह्माकुमारी मत खण्डन
मौलवी मुख मर्दन
स०प्र० की छीछालेदड़ का उत्तर
महान पुरुष कैसे बनते हैं
सव्याख्या विवाह पद्धति
अण्डा और मांस में विष

तुलसी और शालग्राम
चोटी २० पैसे, जनेऊ ५० पैसे
कुरान की विचारणीय बातें
पुराणों के कृष्ण
शिवजी के ४ विलक्षण बेटे
मृतक श्राद्ध खण्डन
विभिन्न मतों में ईश्वर
गीता पर ४२ प्रश्न
शास्त्रार्थ के चैलेंज का उत्तर
पौराणिक कीर्तन पाखण्ड है
बाइबिल पर सप्रमाण ३१ प्रश्न
अर्थ सहित वैदिक संध्या
सनातन धर्म में नियोग व्यवस्था
नारी पर मजहबी अत्याचार
हंसामत का पोलखाता
पौराणिक मुख चपेटिका
दुर्गा पर नरबलि
स्वर्ग विवेचन
हनुमान जी बन्दर नहीं थे
कुरान खुदाई किताब नहीं है
शैतान की कहानी
खुदा का रोजनामचा
नरसिंह अवतार वध
संसार के पौराणिक से ३१ प्रश्न
असत्य पर सत्य की विजय
अवतारवाद पर ३१ प्रश्न
ईसा मुक्तिदाता नहीं था
मरियम और ईसा
मूर्ति पूजा पर ३१ प्रश्न
ईसाई मत का पोलखाता
मृतक श्राद्ध पर २१ प्रश्न
तम्बाकू में विष